वर्ष : १३
अंक : ११९
नवम्बर २००२
कार्तिक मास
विक्रम सं. २०५९

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मंगलमय हो नूतन वर्ष
आशाराम ॐ

श्री

शुभ लाभ

श्री
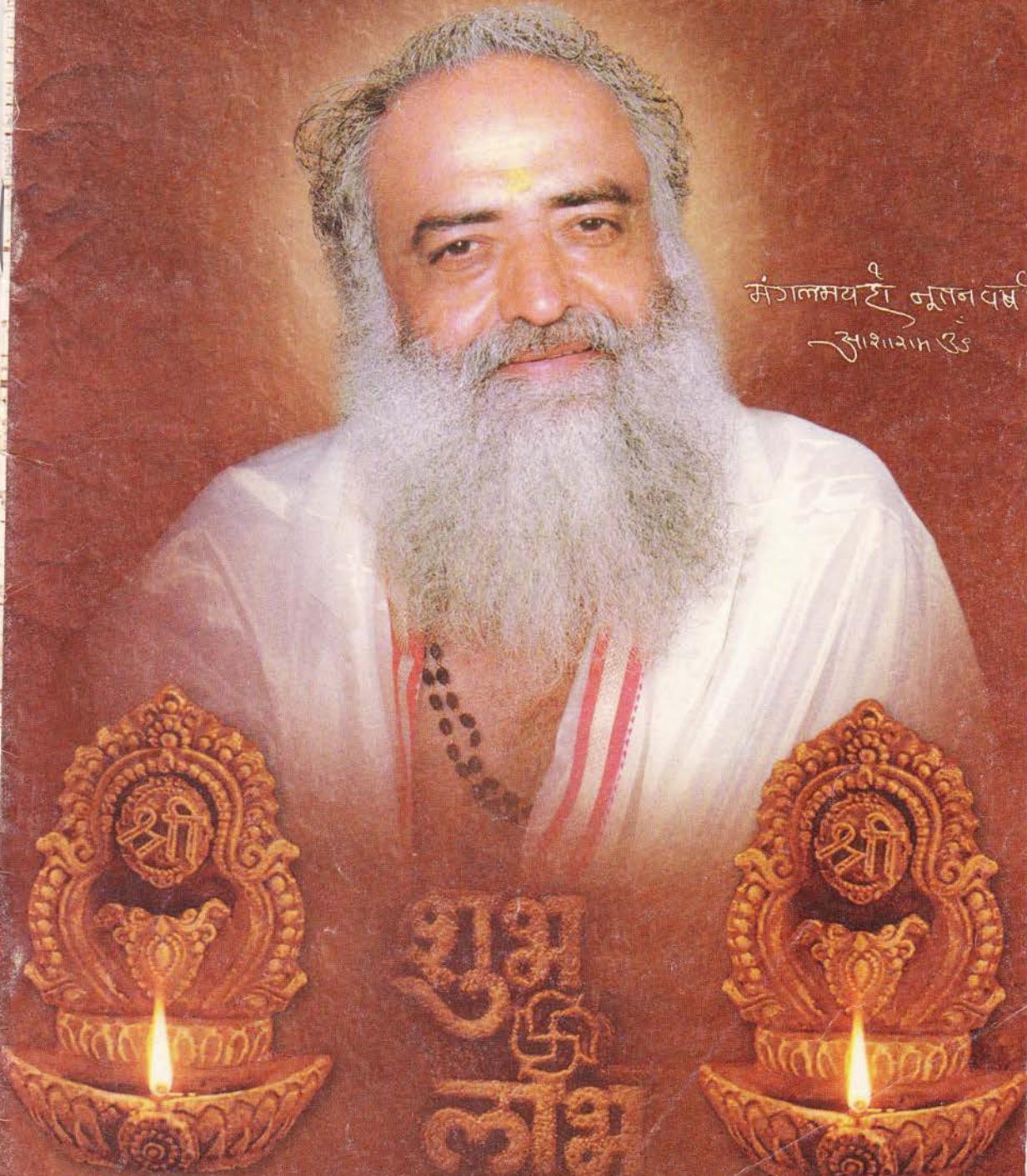
प्रति वर्ष-सी इस बार भी दीपावली है आयी । गुरुज्ञान का दीप तुम जलाओ मेरे भाई ॥
छोड़के मोह-माया को करलो प्रभु से सगाई । संदेश है यह दीपावली का सबको खूब-खूब बधाई ॥

भक्ति का माधुर्य, योग का सामर्थ्य, ज्ञान की निर्भयता और कर्म की कुशलता – ये सभी एकसाथ पाने का सरल माध्यम है – 'सत्संग' ! इसी सत्संग–रस में सराबोर नीमचवासी (म. प्र.).

जो गुरुवर सत्संग सुनाते । हम पर अमी दृष्टी बरसाते ॥ उनका स्वागत कैसे करें हम । आरती कर शीश नवाते ॥
पूज्यश्री की आरती उतारते हुए गुड़गाँव (हरियाणा) के भक्त ।
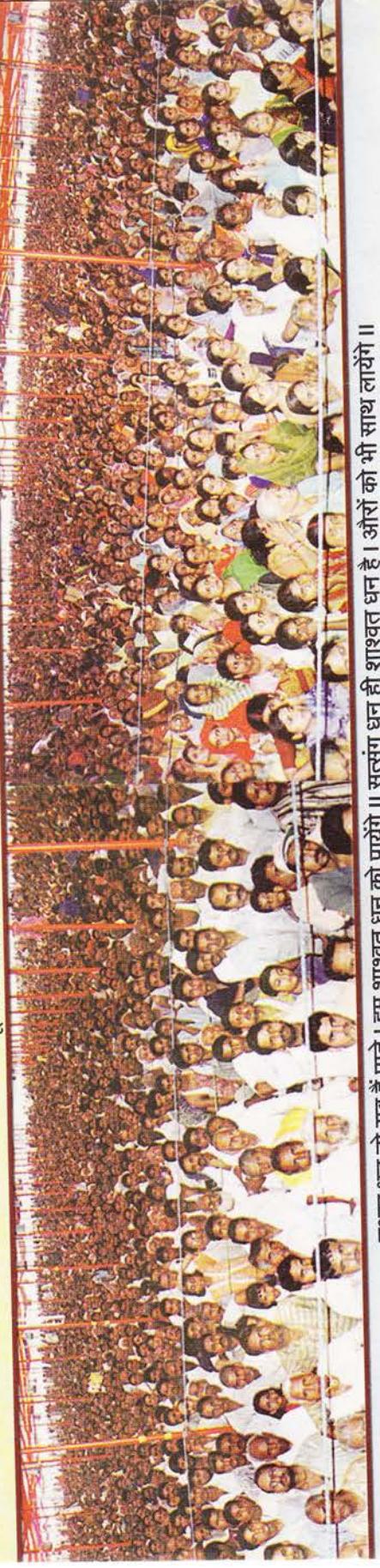
नश्वर धन तो सब हैं पाते । हम शाश्वत धन को पायेंगे ॥ सत्संग धन ही शाश्वत धन है । औरों को भी साथ लायेंगे ॥
पूज्यश्री के मैनपुरी (उ. प्र.) में आयोजित सत्संग कार्यक्रम में शाश्वत धन की कमाई करता जनसमुदाय ।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : ११९
९ नवम्बर २००२
कार्तिक मास, विक्रम संवत् २०५९
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय 'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३० **संस्कार चैनल** पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३० *'संकीर्तन'* सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

काव्यगुंजन

दिल दीप जलाता चल...

हरिनाम के हीरों से, जीवन को सजाता चल।
प्रभुप्रेम में हो पागल, निज मस्ती में गाता चल।।
माना है डगर मुश्किल, घनघोर अँधेरा है।
इन चोर लुटेरों ने, तुझे राह में घेरा है।
गुरुज्ञान से हो निर्भय, साधक कदम बढ़ाता चल।।
माना है नहीं साथी, तू एक अकेला है।
गम के तूफानों में, जीवन सफर दुहेला है।
गुरुनाम से हो निश्चल, मन स्व में डुबाता चल।।
माना है जग सारा, बस एक झमेला है।
स्वप्नों की नगरी में, दो दिन का मेला है।
गुरुध्यान से हो पावन, भ्रम भेद मिटाता चल।।
माना है निज अंतर, विषयों का डेरा है।
अहंता ममता का, चित्त में बसेरा है।
गुरु रहमत से हो सबल, दिल दीप जलाता चल।।

– जानकी चंदनानी, अमदावाद.

*

मानव मोह नींद से जागो

सब कुछ छूट जाने के पहले, दुखद मृत्यु आने के पहले।
निज को बंधन-मुक्त बना लो, गुरुजन के संग लागो।।
जग में कितने ही सुख देखे, सुख के पीछे ही दुःख देखे।
अब यदि शांति चाहते हो तो, सब दोषों को त्यागो।।
तन धन को अपना मत जानो, परमेश्वर को अपना मानो।
चाहे कुछ आये या जाये, तुम न कभी कुछ माँगो।।
लोभ मान माया को तजकर, परम प्रेममय प्रभु को भजकर।
पथिक तुम्हें योगी होना है, भोग-भूमि से भागो।।

- पथिकजी महाराज

तत्त्व दर्शन

दो प्रकार के जगत

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सारा जगत मन की कल्पना से उत्पन्न हुआ है और उसीमें फँसा हुआ है। मन की कल्पना सुख बनाती है तब सुखी हो जाते हैं और मन की कल्पना दुःख बनाती है तब दुःखी हो जाते हैं। परंतु जब मन की कल्पना दिखती है, जीव मन की कल्पनाओं के पार पहुँचता है तब न सुख होता है, न दुःख होता है, जीव परमानंद को पा लेता है।

मन की कल्पना में ही पुण्य और पाप हैं। किसी मुसलमान को मंदिर में ले जाओ तो उसके धर्म के कट्टर लोग उसको कहेंगे : 'तूने पाप किया है।' किंतु हिंदू अगर मंदिर में जाता है तो समझता है : 'मुझे पुण्य हुआ।'

वास्तव में पाप-पुण्य किसको कहते हैं ?

जो अंतर्यामी परमेश्वर की ओर ले जाय, कल्पनाओं से पार पहुँचाये उसको पुण्यकर्म कहते हैं और जो ईश्वर से दूर करके कल्पनाओं में भटका दे उसको पापकर्म कहते हैं।

यह कल्पनामात्र है कि फलानी चीज मिलेगी तो मैं सुखी होऊँगा, फलाना शत्रु मर जाय तो मैं सुखी होऊँगा, फलाना मित्र मिलेगा तो सुखी होऊँगा... इस सुख की कल्पना-कल्पना में ही जीवन बीत जाता है और मरते समय भी कोई-न-कोई परेशानी बनी ही रहती है।

मेरा भाई मुझे कहता था : 'तुम होशियार हो। मेरा साथ दो तो हम फलाने सेठ से भी आगे बढ़ सकते हैं। तुम्हारी जरा-सी युक्ति होती है तो हमारा छक्का लगता है। तुम सुधर जाओ तो हम इससे

भी बड़े हो सकते हैं।'

मेरे बड़े भाई की कल्पना थी कि फलाने सेठ की बराबरी कर ली तो मानो, जीवन का लक्ष्य ही पूरा हो गया, लेकिन मेरी कल्पना कुछ और ही थी कि गुरु के पास जायेंगे, आत्मा-परमात्मा को पायेंगे। मेरी कल्पना सात्त्विक थी तो हम गुरु के पास गये और जब गुरु ने कल्पनाओं से परे पहुँचाया तो सारे-के-सारे सेठ कतार में लगकर मत्था टेकने लग गये !

जगत भी कल्पित है और जगत के सुख-दुःख भी कल्पित हैं लेकिन जिस परमात्मा की सत्ता से इसका अनुभव होता है वह आत्मा अकल्पित, अजर-अमर है, वही शाश्वत है। वह एक हृदय में है इसलिए उसको 'आत्मा' कहते हैं और सब हृदयों में वही बस रहा है इसलिए उसको 'परमात्मा' कहते हैं। अपने दिल की ओर इशारा करके बोलते हैं तो कहते हैं कि 'आत्मा' है लेकिन सर्वव्यापक की ओर इशारा करना है तो कहते हैं कि 'परमात्मा' है।

कई लोग तर्क करते हैं कि हममें परमात्मा हैं तो जब हम मर जाते हैं और शरीर को जला दिया जाता है तब भगवान भी जल जाते होंगे या तो शरीर से बाहर निकल जाते होंगे ?

न भगवान जलते हैं और न भगवान निकलते हैं। यदि भगवान जल जायें तो भगवान अमर कैसे और यदि निकल जायें तो भगवान सर्वव्यापी कैसे ? भगवान तो सर्वव्यापक और अमर हैं। जैसे घड़ा नष्ट हो जाता है लेकिन घड़े में आया हुआ आकाश नष्ट नहीं होता है, ऐसे ही परमात्मा कभी नष्ट नहीं होते हैं।

पशु-पक्षी मरते हैं, पेड़-पौधे नष्ट होते हैं। मरता तो वह है जिसका जन्म हुआ है। भगवान तो अजन्मे हैं, वे कैसे मर सकते हैं ? भगवान अजर हैं, अमर हैं, अविनाशी हैं, अनादि हैं, अनंत हैं और सच्चिदानंदस्वरूप हैं और वे ही भगवान सबकी आत्मा होकर बैठे हैं लेकिन हम कल्पनाओं के जगत में ही बन-बनकर मरते जा रहे हैं कि मैं फलाना हूँ, मैं फलाने का पति हूँ, मैं फलाने का बेटा हूँ, मैं साहब हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ आदि-आदि।

हकीकत तो यह है कि मैं इन सबको सत्ता देनेवाले परमात्मा का सनातन अंश हूँ। भगवान भी कहते हैं : **ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।** जैसे घड़े का आकाश महाकाश का सनातन अंश है, वैसे ही जीवात्मा परमात्मा का सनातन अविभाज्य अंश है।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : ''ब्रह्म क्या है ?''

श्रीकृष्ण ने कहा : ''जो अविनाशी है वह ब्रह्म है।''

अर्जुन : ''अविनाशी ब्रह्म है लेकिन यहाँ तो सब विनाशी है।''

श्रीकृष्ण : ''यहाँ जो दिखता है वह विनाशी है लेकिन जो उसे देखता है वह अविनाशी है। जब तुम ऊपर-ऊपर से देखोगे तो विनाशी लगेगा और गहराई से देखोगे तो पता चलेगा कि अविनाशी है।''

जब आप माला अथवा फूल को बाहर की आँख से देखते हो तो विनाशी है और भीतर के अस्तित्व की आँख से देखते हो तो अविनाशी है। समय पाकर माला का, फूल का नाम-रूप मिट जायेगा फिर भी कुछ शेष रहेगा। जो रहता है वह अविनाशी है और जो दिखता है वह विनाशी है।

अविनाशी के आधार पर ही विनाशी टिकता है। अस्तित्व के आधार पर ही नाम-रूप टिकता है। 'अस्ति-है, भाति-जानने में आता है और प्रिय-प्रियता' - यह अविनाशी का स्वभाव है। नाम और रूप - यह विनाशी माया का स्वभाव है। हम विनाशी माया को अविनाशी करना चाहते हैं और अविनाशी की खबर नहीं रखते हैं।

कोई यह कहकर रोता है कि 'मेरा बेटा मर गया...।' अरे, बेटा कभी मरता नहीं है फिर भी हम रोते हैं क्योंकि हमारे खिचड़ी जगत (कल्पना-जगत) का बेटा मर गया है।

दो प्रकार का जगत होता है :

(१) ईश्वर का जगत।

(२) कल्पना का जगत।

अपना कल्पना का जगत होता है तो अपने जगत में जीवन और मृत्यु सत्य लगते हैं, परंतु ईश्वर के जगत में न मौत है न जीवन। उस जगत में न

कोई मरता है और न कोई जीता है।

आपने स्वप्न में देखा कि बहुत-से लोग पैदा हुए, फले-फूले, फिर मर गये। जब आँख खुलती है तो पता चलता है कि यह तो स्वप्न था। फिर भी जिसकी सत्ता से स्वप्न चला था वह द्रष्टा ज्यों-का-त्यों रहा। स्वप्न शुरू नहीं हुआ था तब भी वह(द्रष्टा) था, स्वप्न चल रहा था तब भी वह था और स्वप्न टूट गया तब भी वह है। उसीको नानकजी कहते हैं :

आदि सचु जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

स्वप्न के आदि में भी वह सत् है। स्वप्न के मध्य में भी वह सत् है और स्वप्न टूट जाने के बाद भी वह सत् है। जन्म से पहले भी यह बेटा किसी और रूप में था और मृत्यु के बाद भी किसी और रूप में रहेगा। उसके अस्तित्व का नाश नहीं होता। किंतु अभी जिस रूप में है, अभी जिस माँ का बेटा है उसका (नाम-रूप का) नाश हो सकता है, लेकिन अस्तित्व का नाश नहीं होता।

अभी जो हमारा कल्पना का जगत है उसमें आना-जाना, जन्मना-मरना सच्चा भासता है। ईश्वर के जगत में देखो तो ईश्वर को छोड़कर कोई बाहर जा ही नहीं सकता। ईश्वर सत्य है तो ईश्वर से जो कुछ बना है वह भी तो सत्य है। सत्य इस अर्थ में है कि नाम और रूप को हटाकर सत्य है।

एक गाँव में दो भाई थे अमर और गणेश। उनको एक-एक पुत्र था। दोनों के बेटे दूर के शहर में पढ़ाई करने गये। अमर के बेटे ने सदाचारी दोस्तों की संगत की, पढ़ा-लिखा और इंजीनियर बन गया। उसने एक छोटा-सा कारखाना खोल लिया। लाखों रुपये कमाये।

दूसरे ने, गणेश के बेटे ने दुराचार किया, क्लबों में गया, विदेशी खान-पान किया, रॉक एंड रोल किया... आजकल के आधुनिक समझदार कहलानेवाले लोग जो करते हैं, वह किया और अशांत होता गया। ज्यों-ज्यों सुख खोजते-खोजते सुविधा में गिरता गया, त्यों-त्यों दुःख हाथ लगा और खुद को पिस्तौल से गोली मारकर मर गया।

गणेश का लड़का मर गया और अमर का लड़का उन्नत हो गया। वहाँ से कोई व्यक्ति गाँव, आ रहा था, उसके द्वारा अमर के बेटे ने समाचार भेजा : 'मेरे चाचाजी को बता देना कि आपका बेटा आत्महत्या करके मर गया है और मेरे पिता को बता देना कि मैंने कारखाना लगाया है और लाखों रुपये कमाये हैं।'

आनेवाले व्यक्ति ने सोचा कि अमरजी बहुत कंजूस हैं। अगर उनको यह खुशखबरी सुनाऊँगा तो इनाम नहीं मिलेगा और गणेशजी दिलदार हैं। अतः, उसने गणेशजी को जो खबर देनी थी वह अमरजी को दे दी और जो अमरजी को खबर देनी थी वह गणेशजी को दे दी। ईश्वर की सृष्टि में तो गणेश का बेटा मर गया है और अमर का जीवित है लेकिन कल्पना के जगत में गणेश का बेटा मौजूद है और अमर का मर गया है।

जब गणेशजी ने सुना कि मेरा बेटा इंजीनियर हो गया है और उसने कारखाना खोल लिया है तो उन्होंने समाचार लानेवाले को अपनी अँगूठी उतारकर दे दी, घर में हलवा-पूरी बनवायी और खूब खुश हुए। ईश्वर की सृष्टि में तो उनका बेटा मर गया लेकिन उनकी सृष्टि में जिंदा है।

ईश्वर की सृष्टि में कोई आता है या जाता है तो कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि उसको कुछ छोड़कर कहीं आना-जाना नहीं होता है। केवल नाम-रूप बदल जाते हैं।

अमरजी का बेटा ईश्वर की सृष्टि में तो जीवित था लेकिन जब उनको सुनाया कि उनका बेटा मर गया तो वे रोने बैठ गये क्योंकि उनकी सृष्टि में उनका बेटा मर गया।

जहाँ-जहाँ और जितनी-जितनी हमारी ममता अथवा लगाव होता है, वहाँ-वहाँ और उतना-उतना हमें सुख-दुःख महसूस होता है। अभी भी कितने ही मरीज अस्पताल में कराहते होंगे, उनसे हमारा कोई लगाव या ममता नहीं है तो हमको कुछ नहीं होता है। लेकिन जहाँ हमारा लगाव होता है वहाँ कह उठते हैं : 'हाय रे, मैं मर गया...।'

'अरे, तू तो जिंदा है, क्या हुआ ?'

'मेरी पत्नी बीमार है।'

अगर सगाई से पहले उस लड़की (पत्नी) को कुछ हो जाता तो ? अथवा तलाक के बाद उसे कुछ हो जाता तो ?

तब दुःख नहीं होता क्योंकि उससे लगाव नहीं है। ...तो यह हमारा खिचड़ी जगत है। यह हमारे मन की मान्यता है। खिचड़ी जगत में ही राग-द्वेष होता है, हर्ष-शोक होता है क्योंकि हमने अपने शरीर को ही मैं मान लिया है और शरीर के संबंधियों को मेरा मान लिया है।

संत तुलसीदासजी ने कहा है :

मैं अरु मोर तोर की माया। बश कर दीन्हीं जीवन काया॥

श्रुति कहती है कि मैं और मेरा करके ही तुम सुखी-दुःखी हो रहे हो अब वेदांत की ओर आ जाओ। वेद भगवान की ओर आ जाओ। तुम अपने असली अस्तित्व की ओर देखो, जो कभी नहीं मिटता है।

शरीर मर जायेगा और जला दिया जायेगा तब इसमें जो अग्नितत्त्व है वह तेज में मिल जायेगा। इसमें जो जलतत्त्व है वह व्यापक जलतत्त्व में मिल जायेगा। शरीर का पृथ्वीतत्त्व राख व हड्डियाँ नदी में बहा दी जायेंगी। शरीर का आकाशतत्त्व आकाश में मिल जायेगा और वायुतत्त्व भी वायु में मिल जायेगा।

वास्तव में देखा जाय तो शरीर का भी नाश नहीं होता बल्कि रूपांतरण होता है। न शरीर का नाश होता है, न जीव का नाश होता है। लौकिक दृष्टि से जब शरीर और जीव का नाश नहीं है तो आत्मशिव का नाश कैसे हो सकता है ? कड़ाही में तेल गर्म करो तो कड़ाही में आया हुआ चाँद गर्म नहीं होता और तेल के ठंडा होने पर ठंडा नहीं होता तो असली चाँद को ठंडक या गर्मी कैसी ?

फिर भी शरीररूपी कड़ाही में बैठकर कमबख्त जीव मान रहा है कि कड़ाही ठंडी हुई तो मैं ठंडा हो गया और कड़ाही गर्म हुई तो मैं मर गया... यह कल्पनामात्र है, खिचड़ी जगत है। मूर्छा में भी कोई सुख-दुःख नहीं होता, लय में भी सुख-दुःख नहीं होता और समाधि में भी सुख-दुःख नहीं होता है। खिचड़ी जगत में ही सुख-दुःख होता है।

सुख-दुःख केवल वृत्तियों का खेल है। ऐसे ही धर्म-अधर्म भी आपकी वृत्तियों का खेल है। हिंदूपना और मुसलमानपना - यह भी आपकी वृत्तियों का खेल है। तुम लड़की हो या लड़का हो - यह भी तुमको सुनाया गया है और यह सत्य नहीं है।

न तुम लड़की हो, न लड़का हो। न तुम सेठ हो, न नौकर हो। न तुम भक्त हो, न अभक्त हो। न तुम भारतवासी हो, न विदेशी हो। वास्तव में तो तुम ऐसे हो कि जिसका बयान करना बेवकूफी है। नानकजी कहते हैं :

मत करो वर्णन हरि बेअंत है। क्या जाने वो कैसो रे ?

कोई बोलता है कि 'मरूँगा तब सुखी होऊँगा...' तो समझो उसके लिए यहाँ सुख का द्वार बंद है। उपासक कहता है कि 'मरते समय भगवान याद आयेंगे तो भगवान के लोक में जायेंगे' तो उसके लिए मरते समय की उपासना जरूरी है।

कर्मी के लिए कर्म जरूरी है, भोगी के लिए भोग जरूरी है, त्यागी के लिए त्याग जरूरी है, उपासक के लिए उपासना जरूरी है लेकिन ज्ञानी के लिए कुछ जरूरी नहीं है। इसलिए ज्ञानी सदा निर्लेप होता है।

ब्रहम गिआनी सदा निरलेप॥
जैसे जल महि कमल अलेप॥
ब्रहम गिआनी मुकति जुगति जीअ का दाता॥
ब्रहम गिआनी पूरन पुरखु बिधाता॥
ब्रहम गिआनी का कथिआ न जाइ अधाख्यरु॥
ब्रहम गिआनी सरब का ठाकुरु॥
ब्रहम गिआनी की मिति कउनु बखानै॥
ब्रहम गिआनी की गति ब्रहम गिआनी जानै॥
हरखु सोगु जा कै नही बैरी मीत समानि॥
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि॥

सवेरे जल्दी उठेगा जो,
रहेगा वो हर वक्त हँसी-खुशी।
न आयेगी सुस्ती कभी नाम को,
खुशी से करेगा हर इक काम को।
सुबह का यह वक्त और ठण्डी हवा,
यह है १०० दवाओं से बेहतर दवा।

द्वितीय अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान कहते हैं : लक्ष्मी ! प्रथम अध्याय के माहात्म्य का उत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अन्य अध्यायों के माहात्म्य श्रवण करो। दक्षिण दिशा में वेदवेत्ता ब्राह्मणों के पुरंदरपुर नामक नगर में श्रीमान देवशर्मा नामक एक विद्वान ब्राह्मण रहते थे। वे अतिथियों के पूजक, स्वाध्यायशील, वेद-शास्त्रों के विशेषज्ञ, यज्ञों का अनुष्ठान करनेवाले और तपस्वियों के सदा ही प्रिय थे। उन्होंने उत्तम द्रव्यों के द्वारा अग्नि में हवन करके दीर्घकाल तक देवताओं को तृप्त किया, किंतु उन धर्मात्मा ब्राह्मण को कभी सदा रहनेवाली शांति न मिली। वे परम कल्याणमय तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से प्रतिदिन प्रचुर सामग्रियों के द्वारा सत्य-संकल्पवाले तपस्वियों की सेवा करने लगे।

इस प्रकार शुभ आचरण करते हुए उन्हें बहुत समय बीत गया। तदनन्तर एक दिन पृथ्वी पर उनके समक्ष एक त्यागी महात्मा प्रकट हुए। वे पूर्ण अनुभवी, आकांक्षारहित, नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखनेवाले तथा शांतचित्त थे। निरंतर परमात्मा के चिंतन में संलग्न हो वे सदा आनंदविभोर रहते थे। देवशर्मा ने उन नित्य संतुष्ट तपस्वी को शुद्धभाव से प्रणाम किया और पूछा : 'महात्मन् ! मुझे शांतिमयी स्थिति कैसे प्राप्त होगी ?' तब उन आत्मज्ञानी संत ने देवशर्मा को सौपुर ग्राम के निवासी मित्रवान का, जो बकरियों का चरवाहा था,परिचय दिया और कहा : 'वही तुम्हें उपदेश देगा।'

यह सुनकर देवशर्मा ने महात्मा के चरणों की वंदना की और समृद्धिशाली सौपुर ग्राम में पहुँचकर उसके उत्तर भाग में एक विशाल वन देखा। उसी वन में नदी के किनारे एक शिला पर मित्रवान बैठा था। उसके नेत्र आनंदातिरेक से निश्चल हो रहे थे वह अपलक दृष्टि से देख रहा था। वह स्थान आपस का स्वाभाविक वैर छोड़कर एकत्रित हुए परस्पर विरोधी जंतुओं से घिरा था। वहाँ उद्यान में मंद-मंद वायु चल रही थी। मृगों के झुंड शांतभाव से बैठे थे और मित्रवान दया से भरी हुई आनंदमयी मनोहारिणी दृष्टि से पृथ्वी पर मानो अमृत छिड़क रहा था। इस रूप में उसे देखकर देवशर्मा का मन प्रसन्न हो गया। वे उत्सुक होकर बड़े विनय के साथ मित्रवान के पास गये। मित्रवान ने भी अपने मस्तक को किंचित् नवाकर देवशर्मा का सत्कार किया। तदनंतर विद्वान देवशर्मा अनन्य-चित्त से मित्रवान के समीप गये और जब उसके ध्यान का समय समाप्त हो गया, उस समय उन्होंने अपने मन की बात पूछी : 'महाभाग ! मैं आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे इस मनोरथ की पूर्ति के लिए मुझे किसी ऐसे उपाय का उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो।'

देवशर्मा की बात सुनकर मित्रवान ने एक क्षण तक कुछ विचार किया। उसके बाद इस प्रकार कहा : 'विद्वन् ! एक समय की बात है। मैं वन के भीतर बकरियों की रक्षा कर रहा था। इतने में ही एक भयंकर व्याघ्र पर मेरी दृष्टि पड़ी, जो मानो सबको ग्रस लेना चाहता था। मैं मृत्यु से डरता था, इसलिए व्याघ्र को आते देख बकरियों के झुंड को आगे करके वहाँ से भाग चला, किंतु एक बकरी तुरंत ही सारा भय छोड़कर नदी के किनारे उस बाघ के पास बेरोकटोक चली गयी। फिर तो व्याघ्र भी द्वेष छोड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसे इस अवस्था में देखकर बकरी बोली : 'व्याघ्र ! तुम्हें तो अभीष्ट भोजन प्राप्त हुआ है। मेरे शरीर से मांस निकालकर प्रेमपूर्वक खाओ न ! तुम इतनी देर से खड़े क्यों हो ? तुम्हारे मन में मुझे खाने का विचार क्यों नहीं हो रहा है ?'

व्याघ्र बोला : बकरी ! इस स्थान पर आते ही

मेरे मन से द्वेष का भाव निकल गया। भूख-प्यास भी मिट गयी। इसलिए पास आने पर भी अब मैं तुझे खाना नहीं चाहता।

व्याघ्र के इस प्रकार कहने पर बकरी बोली : 'न जाने मैं कैसे निर्भय हो गयी हूँ। इसमें क्या कारण हो सकता है ? यदि तुम जानते हो तो बताओ।'

यह सुनकर व्याघ्र ने कहा : 'मैं भी नहीं जानता। चलो, सामने खड़े हुए इन महापुरुष से पूछें।'

ऐसा निश्चय करके वे दोनों वहाँ से चल दिये। उन दोनों के स्वभाव में यह विचित्र परिवर्तन देखकर मैं बहुत विस्मय में पड़ा था। इतने में ही उन्होंने मुझसे ही आकर प्रश्न किया। वहाँ वृक्ष की शाखा पर एक वानरराज था। उन दोनों के साथ मैंने भी वानरराज से पूछा।

विप्रवर ! मेरे पूछने पर वानरराज ने आदरपूर्वक कहा : 'अजापाल ! सुनो, इस विषय में मैं तुम्हें प्राचीन वृत्तांत सुनाता हूँ। यह सामने वन के भीतर जो बहुत बड़ा मंदिर है, उसकी ओर देखो। इसमें ब्रह्माजी का स्थापित किया हुआ एक शिवलिंग है। पूर्वकाल में यहाँ सुकर्मा नामक एक बुद्धिमान महात्मा रहते थे, जो तपस्या में संलग्न होकर इस मंदिर में उपासना करते थे। वे वन में से फूलों का संग्रह कर लाते और नदी के जल से पूजनीय भगवान शंकर को स्नान कराकर उन्हींसे उनकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार आराधना का कार्य करते हुए सुकर्मा यहाँ निवास करते थे। बहुत समय के बाद उनके समीप किसी अतिथि का आगमन हुआ। सुकर्मा ने भोजन के लिए फल लाकर अतिथि को अर्पण किया और कहा : 'विद्वन् ! मैं केवल तत्त्वज्ञान की इच्छा से भगवान शंकर की आराधना करता हूँ। आज इस आराधना का फल परिपक्व होकर मुझे मिल गया, क्योंकि इस समय आप-जैसे महापुरुष ने मुझ पर अनुग्रह किया है।'

सुकर्मा के ये मधुर वचन सुनकर तपस्या के धनी महात्मा अतिथि को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक शिलाखंड पर गीता का दूसरा अध्याय लिख दिया और ब्राह्मण को उसके पाठ तथा अभ्यास के लिए आज्ञा देते हुए कहा : 'ब्रह्मन् ! इससे तुम्हारा आत्मज्ञान-संबंधी मनोरथ अपने-आप सफल हो जायेगा।' इतना कहकर वे बुद्धिमान तपस्वी सुकर्मा के सामने ही उनके देखते-देखते अंतर्धान हो गये। सुकर्मा विस्मित होकर उनके आदेश के अनुसार निरंतर गीता के द्वितीय अध्याय का अभ्यास करने लगे। तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् अंतःकरण शुद्ध होकर उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई। फिर वे जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ का तपोवन शांत हो गया। उनमें शीत-उष्ण और राग-द्वेष आदि की बाधाएँ दूर हो गयीं। इतना ही नहीं, उन स्थानों में भूख-प्यास का कष्ट भी जाता रहा तथा भय का सर्वथा अभाव हो गया। यह सब द्वितीय अध्याय का जप करनेवाले सुकर्मा ब्राह्मण की तपस्या का ही प्रभाव समझो।

मित्रवान कहता है : वानरराज के ऐसा कहने पर मैं प्रसन्नतापूर्वक बकरी और व्याघ्र के साथ उस मंदिर की ओर गया। वहाँ जाकर शिलाखंड पर लिखे हुए गीता के द्वितीय अध्याय को मैंने देखा और पढ़ा। उसीकी आवृत्ति करने से मैंने तपस्या का पार पा लिया है। अतः भद्रपुरुष ! तुम भी सदा द्वितीय अध्याय की ही आवृत्ति किया करो। ऐसा करने पर मुक्ति तुमसे दूर नहीं रहेगी।

श्रीभगवान कहते हैं : प्रिये ! मित्रवान के इस प्रकार आदेश देने पर देवशर्मा ने उसका पूजन किया और उसे प्रणाम करके पुरंदरपुर की राह ली। वहाँ किसी देवालय में पूर्वोक्त आत्मज्ञानी महात्मा को पाकर उन्होंने यह सारा वृत्तांत निवेदन किया और सबसे पहले उन्हींसे द्वितीय अध्याय को पढ़ा। उनसे उपदेश पाकर शुद्ध अंतःकरणवाले देवशर्मा प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा के साथ द्वितीय अध्याय का पाठ करने लगे। तबसे उन्होंने अनवद्य (प्रशंसाके योग्य) परम पद को प्राप्त कर लिया। लक्ष्मी ! यह द्वितीय अध्याय का उपाख्यान कहा गया।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और

न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

इस कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है, बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्म का थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान भय से रक्षा कर लेता है। (४०)

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

हे अर्जुन ! इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है, किन्तु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अनन्त होती हैं। (४१)

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। (६२)

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है। (६३)

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

काकभुशुंडिजी चिरंजीवी कैसे हुए ?

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' के निर्वाण प्रकरण में एक प्रसंग आता है :

देवताओं की सभा में देवर्षि नारदजी चिरंजीवियों की कथा सुना रहे थे। किसी कथा के प्रसंग में मुनिवर शातातप ने चिरंजीवी काकभुशुंडिजी की कथा सुनायी। तब वशिष्ठजी को काकभुशुंडिजी से मिलने का कुतूहल हुआ और कथा-समाप्ति के बाद वे मेरुगिरि के उत्तम शिखर पर जा पहुँचे।

काकभुशुंडिजी ने वशिष्ठजी का अर्घ्य-पाद्य से पूजन किया, तदनन्तर उनके आगमन का कारण पूछा। वशिष्ठजी ने कहा : "वायसराज ! तुम किस कुल में उत्पन्न हुए हो ? तुम इतने महान कैसे बने ?"

काकभुशुंडिजी : "मेरी माता ब्रह्माणी की हंसिनी थी। जन्म के पश्चात् जब हम उड़नेयोग्य हो गये तो हमारी माता हमें ब्रह्माणी देवी के पास आशीर्वाद दिलाने के लिए ले गयी। उन्होंने हम पर ऐसा अनुग्रह किया, जिसके फलस्वरूप हम जीवन्मुक्त होकर स्थित हुए।"

वशिष्ठजी : "तुम चिरंजीवी हो। तुमने असंख्य प्रकार की सृष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय देखे हैं। अतः यह बताओ कि इस सृष्टि-क्रम में तुम्हें किस-किस आश्चर्यजनक सृष्टि का स्मरण है ?"

काकभुशुंडिजी : "मुनिश्रेष्ठ ! किसी समय यह पृथ्वी शिला और वृक्षों से रहित थी। तब यह

११ हजार वर्षों तक भस्म से परिपूर्ण थी। एक चतुर्युगी तक इस पृथ्वी पर केवल दैत्य-ही-दैत्य थे। अन्य चतुर्युगी के दो युगों तक इस पर केवल जंगली वृक्ष थे। एक समय चार युगों से भी अधिक काल तक यह केवल पर्वतों से आच्छादित थी। एक बार संपूर्ण पृथ्वी पर अंधकार-ही-अंधकार व्याप्त था।

ब्रह्मन्! मुझे तो यहाँ तक स्मरण है कि मेरे सामने सैकड़ों चतुर्युगियाँ बीत गयीं। मुझे एक ऐसी सृष्टि का भी स्मरण है, जिसमें पर्वत और भूमि का नामोनिशान भी नहीं था। चंद्रमा और सूर्य के बिना ही पूर्ण प्रकाश छाया रहता था और देवता तथा सिद्ध मानव आकाश में ही रहते थे।

मुनिवर! आप तो ब्रह्माजी के पुत्र हैं और आपके भी ८ जन्म हो चुके हैं। इस आठवें जन्म में मेरा आपके साथ समागम होगा - यह मुझे पहले से ही ज्ञात था।

यह वर्तमान सृष्टि जैसी है, ठीक इसी तरह की तीन सृष्टियाँ पहले भी हो चुकी हैं, जिनका मुझे भलीभाँति स्मरण है। हे मुनीश्वर! मंदराचल पर्वत को क्षीरसमुद्र में डालकर जब देवता और दैत्य मथने लगे, तब मंदराचल समुद्र में डूबने लगा, जिससे उनके मुँह पर उदासी छा गयी। उस समय भगवान विष्णु ने कच्छप रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर उठाये रखा और मंथन के बाद सागर से अमृत निकला था - ऐसा यह बारहवाँ समुद्र-मंथन है, यह भी मुझे स्मरण है।

प्रत्येक युग में वेद आदि शास्त्रों के ज्ञाता व्यास व अन्य महर्षियों द्वारा विरचित महाभारत आदि इतिहास भी मुझे याद हैं। ११ बार श्रीराम और १६ बार श्रीकृष्ण अवतार ले चुके हैं।

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मुझे अनेक सृष्टियाँ स्मरण आती हैं, किंतु सभी भ्रममात्र हैं, कोई उपजी नहीं है। ये जगतस्वरूप भ्रांति-जल में बुलबुले के समान कभी स्थित दिख पड़ती हैं, किंतु वास्तव में इनका किसी भी काल में अस्तित्व नहीं है।''

वशिष्ठजी ने पुनः पूछा : ''आपके चिरंजीवी होने का कारण क्या है?''

काकभुशुंडिजी : ''आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी मुझसे पूछ रहे हैं। आपके प्रश्न का उत्तर मैं देता हूँ, क्योंकि आज्ञा का पालन ही सज्जनों की सबसे बड़ी सेवा है - ऐसा मुनिलोग कहते हैं।

भगवन्! समस्त संकल्पों से रहित परमात्म-विषयक भावना से अज्ञानरूपी अंधकार का, उसके कार्यों के साथ, भलीप्रकार विनाश हो जाता है। इस परमात्म-विषयक भावना के अनेक भेद हैं। उनमें से संपूर्ण दुःखों का विनाश करनेवाली प्राणभावना का मैंने आश्रय लिया है। वही मेरे चिरंजीवी होने का आधार है।

श्वास भीतर जाता है और बाहर आता है, उसके बीच की अवस्था को मैं देखता हूँ। इसी प्रकार श्वास बाहर आता है और दुबारा भीतर जाता है, उसके बीच की अवस्था को भी मैं देखता हूँ। उस अवस्था में जो चैतन्य है, शुद्ध-बुद्ध परमात्मा है उसका मैं सुमिरन करता हूँ। वही सबका अपना-आपा है।

महात्मन्! प्राण और अपान की गति के तत्त्व को जानकर उसका अनुसरण करनेवाला पुरुष जन्म-मरणरूपी फाँसी से छूट जाता है, सदा के लिए मुक्त हो जाता है। फिर वह इस संसार में लौटकर नहीं आता।''

श्वास अंदर जाता है तो उसे प्राण कहते हैं और बाहर आता है तो उसे अपान कहते हैं। श्वास के अंदर जाने और बाहर आने के बीच की जो शांत क्षण है, वह परमेश्वरीय क्षण है। इसी प्रकार श्वास के बाहर आने और अंदर जाने के बीच की जो क्षण है, जो सेकंड-आधे सेकंड का समय है, वह परमात्म-क्षण है। उस परमात्म-क्षण में जो स्थित होने का अभ्यास करता है, उसे बहुत लाभ होता है।

सुबह उठें तब भी ऐसा करें और ध्यान करें तब भी ऐसा अभ्यास करें। प्राणायाम करने से पहले और बाद में भी इस प्राणकला का अनुसंधान करे तो जीव मुक्त हो जाता है।

भीष्म पितामह इसी प्राणकला के बल से शरशय्या पर लेटे रहे। अंत समय में भगवान

श्रीकृष्ण के दर्शन करते-करते ज्यों ही उन्होंने प्राणकला को समेटा, त्यों ही उनके शरीर से बाण निकलते गये और घाव भरते गये।

इंद्रियों का स्वामी मन है और मन का स्वामी प्राण है। इस प्राणकला पर जितना-जितना नियंत्रण होगा, उतना ही व्यक्ति समर्थ, सुखी और स्वस्थ रहेगा। बीमारी तब होती है, जब प्राणापान की गति बिगड़ती है। खूब सर्दी लग गयी हो तब बायाँ नथुना बंद करके थोड़ी देर के लिए दायाँ नथुना चालू कर दें तो सर्दी गायब हो जाती है। गर्मी लगती हो तो दायाँ नथुना बंद करके बायाँ चालू कर दें तो गर्मी गायब हो जाती है। इस प्रकार प्राणकला को जानकर व्यक्ति स्वस्थ तो रह ही सकता है, साथ ही साधना में भी बड़ा लाभ उठा सकता है।

काकभुशुंडिजी ने कहा : ''ब्रह्मन् ! महाप्रलय से लेकर प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश को देखता हुआ मैं ज्ञानवान हुआ आज भी जी रहा हूँ। जो बात बीत चुकी है और जो होनेवाली है, उसका मैं कभी चिंतन नहीं करता।

उपर्युक्त प्राणायाम-विषयक दृष्टि का अवलंबन लेकर मैं इस कल्पवृक्ष पर स्थित हूँ। न्याययुक्त जो भी कर्तव्य प्राप्त हो जाते हैं, उनका फलाभिलाषाओं से रहित होकर केवल सुषुप्ति के समान उपरत बुद्धि से अनुष्ठान करता रहता हूँ।

प्राण और अपान के संयोगरूप कुंभककाल में प्रकाशित होनेवाले परमात्म-तत्त्व का निरंतर स्मरण करता हुआ मैं अपने-आपमें स्वयं ही नित्य संतुष्ट हूँ, इसलिए दोषरहित होकर चिरकाल से जी रहा हूँ।

मैंने आज यह प्राप्त किया और भविष्य में दूसरा सुंदर पदार्थ प्राप्त करूँगा - इस प्रकार की चिंता मुझे कभी नहीं होती। मैं अपने या दूसरे किसीके कार्यों की किसी समय, कहीं पर, कभी स्तुति और निंदा नहीं करता। शुभ की प्राप्ति होने पर मेरा मन हर्षित नहीं होता और अशुभ की प्राप्ति होने पर कभी खिन्न नहीं होता, क्योंकि मेरा मन नित्य सम ही रहता है।

मुने ! मेरे मन की चंचलता शांत हो गयी है। मेरा मन शोकरहित, स्वस्थ, समाहित और शांत हो चुका है; इसलिए मैं विकाररहित हुआ चिरकाल से जी रहा हूँ। लकड़ी, रमणी, पर्वत, तृण, अग्नि, हिम, आकाश - इन सबको मैं समभाव से देखता हूँ। जरा और मरण आदि से मैं भयभीत नहीं होता और राज्य-प्राप्ति आदि से भी हर्षित नहीं होता। इसलिए मैं अनामय होकर जीवित हूँ।

ब्रह्मन् ! यह मेरा बंधु है, यह मेरा शत्रु है, यह मेरा है और यह दूसरे का है - इस प्रकार की भेदबुद्धि से मैं रहित हूँ। लेन-देन और विहार करनेवाला, बैठने और खड़ा रहनेवाला, श्वास तथा निद्रा लेनेवाला यह शरीर ही है, आत्मा नहीं - यह मैं अनुभव करता हूँ।

मैं जो कुछ क्रिया करता हूँ, जो कुछ खाता-पीता हूँ, वह सब अहंता-ममता से रहित हुआ ही करता हूँ। मैं दूसरों पर आक्रमण करने में समर्थ होते हुए भी आक्रमण नहीं करता, दूसरों द्वारा खेद पहुँचाये जाने पर भी दुःखी नहीं होता और दरिद्र होने पर भी कुछ नहीं चाहता, इसलिए मैं विकाररहित हुआ बहुत काल से जी रहा हूँ।

मैं आपत्तिकाल में भी चलायमान नहीं होता, वरन् पर्वत की तरह अचल रहता हूँ। जगत, आकाश, देश, काल, परंपरा, क्रिया - इन सबमें चिन्मयरूप से मैं ही हूँ, इस प्रकार की मेरी बुद्धि है। इसलिए मैं विकाररहित हुआ बहुत काल से स्थित हूँ।

स्वर्ग में मेरे दीर्घ आयुष्य की कथा सुनकर आप यहाँ पधारे। मेरे चिरंजीवी होने का रहस्य प्राणकला योगसाधना है। अधिक जीने या जल्दी शरीर छोड़ने से परमात्मानुभव में कोई फर्क नहीं पड़ता। चित्त को सम रखकर अल्प आयुष्यवाले भी उस परमात्मा का ऐसा अनुभव कर सकते हैं।''

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १२१वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया नवम्बर २००२ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

मंत्र-विद्या के मूल तत्त्व

शास्त्रों में सर्वत्र यही निर्देश दिया गया है कि श्रद्धा, धैर्य और गुरुभक्ति ये तीन तत्त्व साधना-यात्रा के अनिवार्य सम्बल हैं और साधना-प्रणाली के सहायक तत्त्व हैं - भक्ति, शुद्धि, आसन, पंचांग सेवन, आचार, धारण, दिव्य देश-सेवन, प्राण-क्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, याग, जप, ध्यान तथा समाधि। इन तत्त्वों की महत्ता इस प्रकार है :

(१) श्रद्धा : साधना में सर्वप्रथम आवश्यकता श्रद्धा की है। जिस साधक के मन में आराधना की मंगलमयता अथवा कल्याणकारिता में श्रद्धा नहीं है, वह उसमें कैसे प्रवृत्त हो सकता है ? श्रद्धा को विचलित करनेवाली यदि कोई वस्तु है तो वह है शंका। 'गीता' में कहा गया है कि **अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।** 'अज्ञानी और श्रद्धारहित शंकाशील मनुष्य विनाश को प्राप्त हो जाता है।'

देव, ब्राह्मण, औषधि, मंत्र आदि भावना के अनुसार फल देते हैं, अतः यदि मंत्र को हम सामान्य मानते हैं तो उसका फल भी सामान्य ही मिलेगा और उसे महान मानेंगे तो वह महान फल देगा। कोई मंत्र छोटा है तो 'यह क्या फल देगा ?' ऐसा कुतर्क नहीं करना चाहिए। अग्नि की छोटी-सी चिंगारी क्या घास के ढेर को नहीं जला देती ? अथवा मच्छर छोटा होने पर भी यदि हाथी के कान में घुस जाय तो क्या उसे विकल नहीं बना देता ? अतः मंत्र कैसा भी हो, उसकी अपूर्व शक्ति पर श्रद्धा रखना नितांत आवश्यक है। इसीलिए वेदों में आया है : **श्रद्धाया सत्यमाप्यते।** 'श्रद्धा से सत्य प्राप्त होता है।'

(२) धैर्य : सभी कार्य शांति और संतोष से फलदायक होते हैं। आतुरता अथवा शीघ्रता से होनेवाले कार्यों में विकार आना स्वाभाविक है। फल के पकने तक धैर्य न रखनेवाला क्या कभी पके फल का स्वाद ले सकता है ? चंचल चित्त से होनेवाली क्रियाओं में विधिलोप का भय बना रहता है और **विधिभ्रंशे कुतः सिद्धि ?** 'विधि के भ्रष्ट हो जाने पर सिद्धि कहाँ ?' अतः मन में पूर्ण संतोष और धैर्य रखकर ही साधना करनी चाहिए।

(३) गुरुभक्ति : मंत्रों की कुंजी गुरु के पास निहित है। प्रायः सभी मंत्र गुरुकृपा से दीक्षित होने पर शीघ्र फल देते हैं। गुरु का पद समस्त देवों से ऊपर है। कहा जाता है :

गुरुः पिता गुरुर्माता, गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन॥

'गुरु पिता हैं, गुरु माता हैं, गुरु देव हैं और गुरु गति हैं। यदि शिवजी नाराज हो जायें तो गुरु रक्षा करनेवाले हैं, किंतु गुरु नाराज हो जायें तो रक्षा करनेवाला कोई नहीं।'

गुरु द्वारा गोविंद के दर्शन सुलभ माने गये हैं। अतएव शास्त्रों में देवपूजा से पूर्व गुरुपूजा का विधान है। कहा भी है :

गुरुभक्ति विहिनस्य तपो विद्या व्रतं कुलम्।
व्यर्थं सर्वं शवस्यैव नानालंकार-भूषणम्॥

'जिस प्रकार किसी मुर्दे को अनेक अलंकार पहनाना व्यर्थ है, उसी प्रकार गुरुभक्ति से रहित मनुष्य के तप, विद्या, व्रत और कुल व्यर्थ हैं।'

भक्ति : ऊपर गुरुभक्ति के बारे में कहा गया है, वैसी ही दृढ़भक्ति भगवच्चरणों में होनी चाहिए, तभी मंत्र और देवता में ऐक्य होगा और यही एकरूपता साधना को फलवती बनायेगी।

(४) शुद्धि : शुद्धि से तात्पर्य स्थान शुद्धि, शरीर शुद्धि, मनःशुद्धि, द्रव्य शुद्धि और क्रिया शुद्धि - इन ५ प्रकार की शुद्धियों से है।

स्थान-शुद्धि : आराधना के लिए जिस स्थान का उपयोग करना हो, वहाँ किसी प्रकार की अपवित्रता न रहे, इसलिए साधना से पहले ही उसे

पानी से धोकर स्वच्छ कर लें। गोबर-गोमूत्र से पवित्र कर लें। गुलाब जल का छिड़काव भी किया जा सकता है और जपादि के समय धूप-दीप से उस स्थान को पवित्र बनाये रखें। यह स्थान एकांत और शांत हो, यह भी आवश्यक है। यही 'स्थान-शुद्धि' है।

शरीर-शुद्धि : शरीर-शुद्धि के लिए पंचगव्य का प्राशन, शुद्ध जल से स्नान तथा शुद्ध वस्त्र-धारण अपेक्षित हैं।

मनःशुद्धि : इस शुद्धि के लिए अपवित्र विचारों का परित्याग तथा पवित्र विचारों की स्थिरता का होना आवश्यक है। इसके लिए स्वाध्याय और सत्संग बहुत ही सहायक होते हैं। यथासम्भव ध्यान का सहारा लेने से भी मन स्थिर होता है।

द्रव्य-शुद्धि : आराधना में जिन वस्तुओं का उपयोग किया जाय, वे भी पूर्णतः शुद्ध हों। इसके लिए ताजे पुष्प, दूध, फल आदि लायें। पूजा के उपकरण शुद्ध हों और साधना के समय काम में ली जानेवाली सभी वस्तुएँ शुद्ध रखी जायें। इसीको 'द्रव्य-शुद्धि' कहते हैं।

क्रिया-शुद्धि : इस शुद्धि से तात्पर्य है - मंत्र साधना के अंगो के रूप में की जानेवाली क्रियाओं की शुद्धता। इसमें मंत्र के पूर्वांग, जैसे - योग मुहूर्त, ऋण-धन विचार, मंत्र से संबंधित न्यास, ध्यानादि तथा जप प्रक्रिया का समावेश होता है।

(५) आसन : जप के समय बैठने की स्थिति और जिस पर बैठकर साधना की जाय, इन दोनों बातों का संबंध आसन से है। सामान्यतया कुछ विशेष साधनाओं को छोड़कर अन्य सभी के लिए स्वस्तिकासन अथवा पद्मासन उपयुक्त माने गये हैं और बैठने के लिए ऊन का आसन सर्वोपयोगी है। जिस आसन का प्रयोग और उपयोग निश्चित किया गया हो, उसे बार-बार बदलना नहीं चाहिए। स्वयं जिस आसन पर बैठकर जपादि करते हों, उस पर दूसरे को न बैठने दें।

(६) पंचांग-सेवन : उपर्युक्त पद्धति से बाह्य और अंतःशुद्धि कर लेने के बाद पंचांग-सेवन का निर्देश है। इसमें आराध्य देव की गीता, सहस्रनाम, स्तोत्र, कवच और हृदय का समावेश है।

गीता सहस्रनामानि स्तवः कवचमेव च।
हृदयं चेति पंचैतत् पंचांग प्रोच्यते बुधैः॥

कुछ मंत्रों के पंचांग तो मिलते हैं, किंतु बहुतों के नहीं मिलते। इस संबंध में कोई शंका न रखते हुए इतना ही पर्याप्त होगा कि जो भी गुरुनिर्दिष्ट साहित्य उपलब्ध हो, उसी का पाठ करें।

(७) आचार : आचार से तात्पर्य है - आचरण। प्रत्येक कर्म में उसके अनुकूल आचरण भी आवश्यक है। यह प्रसिद्ध है : **देवो भूत्वा देवं यजेत्।** 'देव बनकर देव की पूजा करें।' जिस मंत्र का जप किया जाय, उससे संबंधित न्यास, ध्यान आदि पहले जान लें तथा संप्रदाय के अनुरूप प्रयोग करें। यदि इस विधि में मनमाना हेर-फेर किया जायेगा तो सफलता में विलंब, विघ्न अथवा विकार आयेगा। इसे हम आभ्यांतर आचार कह सकते हैं। इसी तरह बाह्य आचारों का पालन भी हर प्रकार से आवश्यक है।

(८) धारण : मंत्र के वर्णों और पदों को शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में धारण करना तथा विभिन्न न्यासों का विधान 'धारण' है।

(९) दिव्य देश-सेवन : उत्तम वातावरण का निर्माण करने के लिए उत्तम स्थान का होना अत्यावश्यक है। जिन स्थानों पर पूर्व काल में महापुरुषों ने वर्षों तक साधना करके सिद्धियाँ प्राप्त की हों, जहाँ सदा पवित्र वातावरण बना रहता हो तथा जहाँ देवताओं के प्रधान पीठ हों, ऐसे पुण्य क्षेत्रों में रहकर स्मरण करना, गंगा-स्नानादि से पवित्रता प्राप्त करना दिव्य देश-सेवन में आता है।

(१०) प्राण-क्रिया : शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में प्राण को ले जाकर मंत्राभ्यास करना तथा प्राणायाम द्वारा मंत्रजप को बढ़ाना 'प्राण-क्रिया' है।

(११) मुद्रा : देवताओं का सन्निधान प्राप्त करने के लिए हाथ की अंगुलियों के योग से विभिन्न आकृतियों का निर्माण मुद्रा के अंतर्गत आता है। यह विषय गुरुगम्य है और प्रत्येक देव के आयुध, आवाहनादि क्रिया और अन्यान्य जप के पूर्वांग और उत्तरांग के रूप में प्रयुक्त होती है। देवताओं को

प्रसन्न तथा असुरों का विनाश करने से इसका नाम 'मुद्रा' पड़ा है।

(१२) तर्पण : जलांजलिपूर्वक मंत्रोच्चारण से तर्पण संपन्न होता है। संध्या के पश्चात् देव, ऋषि और मनुष्य तर्पण किया जाता है तथा जब प्रत्येक मंत्र का पुरश्चरण किया जाता है तो उसमें जप का दशांश हवन और हवन का दशांश तर्पण शास्त्र-विहित है। यह मंत्रदेव के प्रति श्रद्धा-निवेदन की क्रिया है।

(१३) हवन : जौ, तिल, चावल, घृत और शर्करा के मिश्रण से शाकल बनाकर उसकी घृत के साथ अग्नि में आहुति देने की क्रिया को हवन अथवा होम कहते हैं। किसी विशिष्ट मंत्र अथवा देव-विशेष की जप-साधना में कुछ विशिष्ट हवनीय द्रव्य द्वारा भी यह कर्म किया जाता है।

(१४) बलि : इसमें देवताओं के लिए नैवेद्य-अर्पण किया जाता है। मंत्र-विशेष अथवा देवता-विशेष के अनुरोध से कुछ विशिष्ट वस्तुओं का समर्पण भी इसमें होता है, किंतु किसी प्रकार की हिंसा का इसमें कोई स्थान नहीं है।

(१५) याग : इससे अंतर्याग तथा बहिर्याग की प्रक्रिया का संकेत किया है। अंतर्याग में शरीर के विभिन्न अंगों में स्थित देवताओं को नमन करते हुए भावना की जाती है तथा बहिर्याग में न्यास और पूजादि का समावेश होता है।

(१६) जप : मंत्र का जप माला आदि के माध्यम से प्रसिद्ध है।

(१७) ध्यान : सामान्यतया इष्टदेव के स्वरूप का चिंतन 'ध्यान' कहलाता है। मन की एकाग्रता के लिए यह आवश्यक है।

(१८) समाधि : यह ध्यान की सर्वोच्च कोटि है, जिसमें ध्याता बेसुध होकर बाह्य ज्ञान से शून्य बन जाता है।

इस प्रकार मंत्र-योग का आश्रय लेने से मुख्य ध्येय की सिद्धि और परमार्थ की प्राप्ति सुगम बन जाती है। साधक को चाहिए कि इनमें से जो क्रियाएँ सुलभ हैं, उनको यथाशक्ति प्रयोग करे तथा अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो।

(संकलित : 'मंत्र शक्ति', लेखक डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी)

श्रद्धा-विश्वास

जब आपके मन में चिंता होती है तो शरीर पर शिकन पड़ती है, भय होता है, घिग्घी बँध जाती है। काम आने पर उत्तेजना होती है, क्रोध आने पर आँखे लाल हो जाती हैं, खाने का लोभ आने पर जीभ पर पानी आ जाता है। तो इनसे स्पष्ट है कि मनोभावों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। राग और द्वेष होने पर आप क्या-क्या नहीं कर बैठते हैं ? तब क्या श्रद्धा-विश्वास हमारे मन में आयेंगे तो उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ? क्या ये इतने तुच्छ हैं कि आपके मनोबल की किंचित् भी सहायता न करें ?

श्रद्धा-विश्वास आपके शरीर को शांत करते हैं, मन को निःसंशय करते हैं, बुद्धि को द्विगुणित-त्रिगुणित कर देते हैं, अहंकार को शिथिल कर देते हैं, अज्ञान की एक-एक परत को मिटा देते हैं। श्रद्धा-विश्वास दीनता, अधीनता, मलिनता को नष्ट करते हैं, शरीर में ऐसे रासायनिक परिवर्तन करते हैं कि मल-विक्षेप दूर हो जाय, रोग-शोक दूर हो जाय। महात्माओं के अनुभव ग्रहण करने के लिए यह अचूक उपाय है।

जब ईश्वर पर श्रद्धा-विश्वास हृदय में क्रियाशील होता है तो सारी मलिनताओं को धो-बहाता है। काम के स्थान पर शांति, क्रोध के स्थान पर उदासीनता, मोह के स्थान पर समता, लोभ के स्थान पर संतोष - ये हृदय में आ जाते हैं। श्रद्धा-विश्वास के ऐसे मानसिक तत्त्व हैं, जो सहारा तो लेते हैं ईश्वर और महात्मा का, परंतु स्वयं में अतिशय बलवान हो जाते हैं। जब श्रद्धा-विश्वास भगवान की भक्ति का रूप धारण करता है तब भय, मूर्खता, दुःख, भेद-बुद्धि इनके चंगुल से मनुष्य छूट जाता है। आप जैसे शारीरिक कर्म को महत्त्व देते हैं, वैसे ही श्रद्धा-विश्वास को महत्त्व दीजिये। यह आपके रग-रग में, रोम-रोम में, जीवन-मन-प्राण में ऐसा रासायनिक परिवर्तन लायेगा, जिसको समझने में अभी यांत्रिक उपायों को बहुत विलम्ब होगा।

आइये, लौट आइये ! यांत्रिक और आनुमानिक ज्ञान से मुक्त हो जाइये। वह संशय-ग्रस्त है, अनिश्चित है। उसका कभी अंत नहीं होगा। आप

श्रद्धा-विश्वास के द्वारा संसारी भावनाओं से निवृत्त हो जाइये और अपने हृदय में अंतर्यामी की जो ललित लीला हो रही है, उसको निहारिये । वह मधुर-मधुर, लोल-लोक, अमृत-कल्लोल एक बार आपको दर्शन दे तो आपके सारे दुःख-शोक तुरन्त दूर हो जायेंगे। ईश्वर में विश्वास तत्काल मोहजन्य पक्षपात और क्रूरता से मुक्त कर देता है।

श्रद्धा-विश्वास जीवन के मूलभूत तत्त्व हैं। यह मेरी माँ है - इस पर भी श्रद्धा ही करनी पड़ती है, माँ के बताये व्यक्ति को अपना पिता मानना पड़ता है। नाविक पर, पाचक पर, नौकर पर, चिकित्सक पर - विश्वास ही करना पड़ता है। बिना विश्वास के जीवन एक क्षण भी नहीं चल सकता। आप ईश्वर के दर्शन और ज्ञान का प्रयास फिर कभी कर लीजियेगा और वह तो होगा ही होगा, पहले आप ईश्वर पर पूरी श्रद्धा रखिये।

- ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी अखंडानंदजी सरस्वती.

विचार बिन्दु

मनुष्य जैसा सोचता और विचार करता है, उसका उसके जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। विचारों के अनुरूप ही उसका जीवन हो जाता है। वास्तव में मनुष्य विचारों से ही महान बनता है। 'योगवाशिष्ठ महारामायण' में विचारहीन मनुष्य को पशुवत् बताया गया है।

निम्नलिखित सूत्रात्मक वाक्यों को पढ़िये, विचार कीजिये और यथासंभव अपने आचरण में लाने का प्रयत्न कीजिये। ये उपदेशप्रद वाक्य आपको कुछ-न-कुछ प्रेरणा देते हुए प्रतीत होंगे।

* मृत्यु और दुःख के भय का कारण है - अमृतत्व में निष्ठा का अभाव।

* जो वर्तमान को नहीं समझ सकता, वह अनादि और अनंत को कैसे समझेगा ?

* भोग्य वस्तु में वासना का उदय न होना वैराग्य की चरम अवधि है।

* चित्त में अहंकार का उदय न होना बोध की चरम अवधि है।

* लीन हुई वृत्तियों का पुनः उदय न होना उपरामता की चरम अवधि है।

तिथि तथा ग्रहण का प्रभाव

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

पुराणों में वर्णन आता है कि चंद्रमा मन के देव हैं। वे शीतलता प्रदान करते हैं तथा औषधियों को पुष्ट करते हैं।

चंद्रमा की कलाओं के घटने-बढ़ने का प्रभाव समुद्र पर भी पड़ता है। पूर्णिमा और अमावस्या के दिन समुद्र में विशेष ज्वार-भाटा प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। जैसे-जैसे चंद्रोदय देरी से होता है, वैसे-वैसे ज्वार-भाटा भी विलंब से होता है।

चंद्र मन के देवता हैं तो सूर्य बुद्धि के। सूर्योपासना से बुद्धि तीव्र होती है तो चंद्रोपासना से मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं और प्रसन्नता में वृद्धि होती है।

पूर्णिमा का व्रत चंद्रोपासना के अंतर्गत है। जैसे, चंद्रमा पूनम को १६ कलाओं से पूर्ण होता है, वैसे ही उस दिन हमारा मन भी विशेष प्रसन्न होता है। हमारे खाने-पीने या आहार के दोष से जो विष इकट्ठे होते हैं, वे पूनम के दिन उपवास करने से क्षीण हो जाते हैं। खाने में संयम रखने से हमारा चित्त प्रसन्न रहता है और जप, तप, ज्ञान, ध्यान से मन उर्ध्वगामी होता है।

चंद्रमा को दक्ष प्रजापति ने अपनी २७ कन्याएँ अर्पित की थीं। रोहिणी नाम की कन्या के प्रति चंद्र का विशेष स्नेह होने के कारण दूसरी कन्याओं की उपेक्षा हो जाती थी। दूसरी कन्याओं ने पिता के पास जाकर यह बात कही, तब दक्ष ने चंद्र को समझाया, फिर भी उन पर कोई असर न पड़ा। तब दक्ष ने शाप दे दिया कि 'तू पक्षपात करता है, अतः तेरा क्षय हो।'

चंद्र धीरे-धीरे क्षय को प्राप्त हुए। उनके साथ ही वनस्पतियों के गुण भी क्षीण होने लगे। औषधियाँ पुष्ट न होने से लोक-व्यवहार में बाधा पड़ने लगी, तब देवता दुःखी हुए और आदिदेव नारायण के पास गये। भगवान नारायण ने कहा :

''तुम तमाम औषधियों को सागर में डाल दो और समुद्र-मंथन की व्यवस्था करो।''

वासुकी नाग की रस्सी बनाकर भगवान नारायण के सहयोग से समुद्र-मंथन हुआ। भगवान ब्रह्माजी और शिवजी को प्रसन्न करके भगवान नारायण ने समुद्र से चंद्र को पुनः प्रकट कराया। भगवान ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर पूर्णिमा को चंद्र का दिन घोषित कर दिया और ऐसा वरदान भी दिया कि 'इस दिन जो उपवास करेगा, उसका मन प्रसन्न होगा, पाप क्षय होंगे।'

जो सुबह-सुबह शुद्ध वातावरण में घूमते हैं अथवा प्राणायाम आदि करते हैं, उनको विशेष लाभ होता है। ज्यों-ज्यों देर होती जाती है, त्यों-त्यों गाड़ी-मोटर आदि का हानिकारक धुआँ हवामान में घुलता जाता है और हानिकारक तत्त्व बढ़ते जाते हैं, जिससे जीवनशक्ति कम होती जाती है। अतः सूर्योदय के समय का लाभ अवश्य लेना चाहिए।

पूर्णिमा, अमावस्या और अष्टमी के दिन चंद्रकिरणों का विशेष प्रभाव पड़ता है। जो चंद्र की किरणें सागर को प्रभावित कर सकती हैं, वे किरणें हमारे शरीर के जलीय तत्त्व और सप्तधातुओं पर भी असर करें, इसमें क्या आश्चर्य है ?

जो लोग वेदव्यासजी के इस दिव्य ज्ञान से वंचित हैं, वे लोग पूर्णिमा, अमावस्या या अष्टमी जैसे निषिद्ध दिन भी संसार व्यवहार करते हैं और यदि उन दिनों में गर्भाधान हो जाता है तो वह बालक किसी-न-किसी व्याधि से ग्रस्त रहता है। गलती होती है माँ-बाप की और भुगतता है बालक ! फिर माँ-बाप भी परेशान रहते हैं।

अगर इन तिथियों को जप-ध्यान करें तो लाभ भी उतना ही ऊँचा होता है।

इन तिथियों की अपेक्षा ग्रहण का प्रभाव और भी ज्यादा होता है, फिर चाहे सूर्यग्रहण हो या चंद्रग्रहण। **ग्रहण के समय भोजन तो कदापि नहीं करना चाहिए**। उस समय संयम रखकर जप-ध्यान करें तो गजब का फायदा होता है।

गर्भवती महिला को तो ग्रहण के समय खास सावधान रहना चाहिए। राजस्थान में खंडेला के एक पंडित ने अपने यजमान की गर्भवती पत्नी से ग्रहण के समय खूब बढ़िया-बढ़िया खाने के लिए कहा। उसने उस नास्तिक पंडित के कहने से खा तो लिया, लेकिन बेटा अपंग पैदा हुआ !

अतः सूर्यग्रहण या चंद्रग्रहण के समय इन बातों की सावधानी रखनी चाहिए।

इस बार के ग्रहण : **(१) चंद्रग्रहण : २० नवंबर २००२. समय : ५.०२ से ९.३१ तक। (२) सूर्यग्रहण : ४ दिसंबर २००२. समय : १०.२१ से १५.४१ तक।**

सावधान ! लापरवाही से रोग और शोक को न बढ़ायें। उपवास, जप, प्रभु-ध्यान से आरोग्यता प्रसन्नता और प्रभुप्रीति बढ़ायें।

जप द्वारा भगवान के दर्शन करनेवाले भक्त

(१) भक्त तुकाराम ने, जो महाराष्ट्र के एक बड़े संत हुए हैं, केवल 'विट्ठल, विट्ठल' का बार-बार जप करके श्रीकृष्ण के दर्शन पाये।

(२) भक्तश्रेष्ठ बालक ध्रुव ने भगवान विष्णु के, द्वादशाक्षर मंत्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप किया और भगवान का दर्शन पाया।

(३) प्रह्लाद ने 'नारायण-नारायण' कहा और भगवान को सम्मुख देखा।

(४) भक्त रामदास ने, जो महाराजा शिवाजी के गुरु थे, १३ करोड़ राम-मंत्र अर्थात् 'श्री राम जय राम जय-जय राम' का उच्चारण किया। वे महान संत बने।

(५) प्रतिदिन कुछ घड़ी एकांतवास करो, किसी से मत मिलो। अकेले बैठकर अपने नेत्र मूँद लो। मन से प्रेम और भक्तिपूर्वक भगवान का स्मरण करो। इस अभ्यास को लगातार जारी रखो। भगवान के सान्निध्य की तुम्हें अनुभूति होगी और भगवद्दर्शन होंगे।

संदर्भ : जपयोग (स्वामी शिवानंदजी), पृष्ठ १०० से संकलित

सिर दीजै सद्गुरु मिले तो भी सस्ता जान

परमात्मस्वरूप सद्गुरु की महिमा अवर्णनीय है। उनकी महिमा का गुणगान, उनकी स्मृति तथा चिंतन साधकों को अपूर्व सुख, शांति, आनंद और शक्ति प्रदान करता है। वे कर्म में निष्कामता सिखाते हैं, योग की शिक्षा देते हैं, भक्ति का दान देते हैं, ज्ञान की मस्ती देते हैं और जीते-जी मुक्ति का अनुभव कराते हैं।

आध्यात्मिक विकास के लिए, दिव्यत्व की प्राप्ति के लिए, आत्मपद पाने के लिए हमें मार्गदर्शक अर्थात् पूर्ण सत्य के ज्ञाता समर्थ सद्गुरु की अत्यंत आवश्यकता है। जैसे, प्राण बिना जीना संभव नहीं, वैसे ही ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के बिना ज्ञान का प्रकाश नहीं, सुषुप्त शक्तियों का विकास नहीं और अज्ञानांधकार का नाश संभव नहीं।

सद्गुरु चिंता और पाप को हरनेवाले, संशय व अविद्या को मिटानेवाले तथा शिष्य के हृदय में परमात्म-प्रेम की स्थापना करनेवाले होते हैं। वे समस्त मानव-जाति के हितचिंतक, प्राणिमात्र के परम सुहृद तथा भगवदीय गुणों के भंडार होते हैं। वे शिष्य के दुर्गुण-दोषों को हटाते हैं, क्लेशों को मिटाते हैं और उसे सुख-दुःख के प्रभाव से रहित समतामय नवजीवन प्रदान करते हैं।

सदा परब्रह्म परमात्मा के साथ एकत्व को प्राप्त ऐसे महापुरुषों में एक ऐसी अनोखी दृष्टि होती है, जिससे वे मानव को पूर्णरूप से बदल देते हैं। वे परमात्म-तत्त्व में पूर्ण प्रतिष्ठित रहते हैं, परमार्थ में पूर्ण कुशल और व्यवहार में अत्यंत निपुण होते हैं। उनसे सच्चाई से जुड़े रहनेवाले शिष्य महान संकट को भी सहज में पार कर लेते हैं। उनके सान्निध्य में साधक घोर विपरीत परिस्थिति में भी निर्भय व निर्लेप होकर रहते हैं। उन सद्गुरु की महिमा अनोखी है। वे परम गुरु शिव से अभिन्नरूप हैं।

वे पूर्ण सर्वज्ञ होने पर भी अनजान जैसी स्थिति में हो सकते हैं। साधारणतया उन्हें समझना, उन्हें पहचान पाना कठिन होता है। वे पंडितों को पढ़ा सकते हैं और मूढ़ों से सीखते हैं। वे शेरों से लड़ सकते हैं और गीदड़ को देखकर भाग सकते हैं। कुछ नहीं मिले तो माँगते हैं और मिले तो त्याग सकते हैं। ऐसे शहंशाह महापुरुषों से हर कोई कुछ-न-कुछ माँगता है। उनके पास बाह्य कुछ न दिखते हुए भी माँगनेवाले को सब कुछ दे देते हैं। जगत की महा मूल्यवान चीजें भी उनके लिए मूल्यहीन हैं। ऐसे आत्मसिद्ध महापुरुषों के पास सिद्धियाँ सहज ही निवास करती हैं। उनके पास सिद्धियाँ स्वयं चलकर आती हैं, ऋद्धियाँ वहीं अपना निवास-स्थान बना लेती हैं फिर भी उन आत्मानंद में तृप्त महापुरुषों को उनकी परवाह नहीं होती। उनके द्वारा सिद्धियों का उपयोग न करने पर भी सिद्धियाँ अपने-आप क्रियाशील हो जाती हैं। ऐसे नित्य नवीन रस से सम्पन्न आत्मसिद्ध पुरुषों को पाकर पृथ्वी अपने को सनाथ समझती है।

ऐसे सद्गुरु अपने शिष्य को सत्यस्वरूप बताकर, भेद में अभेद को दर्शाकर और शिष्य के जीवत्व को मिटाकर उसे शिवत्व में स्थित कर देते हैं। उन सद्गुरु की महिमा रहस्यमय और अति दिव्य है, उनको साधारण जड़बुद्धिवाले नहीं समझ पाते।

सद्गुरु साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हैं। वे शिष्य की अंतरात्मा और प्रिय प्राण हैं। वे प्रिय प्राण ही नहीं साधकजनों की साधन-संपत्ति हैं। इतना ही नहीं, साधना का लक्ष्य भी वे ही हैं।

गुरुपादोदकं पानं गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।
गुरुमूर्तेः सदा ध्यानं गुरोर्नाम्नः सदा जपः॥

'गुरुदेव के चरणामृत का पान करना, गुरुदेव के भोजन में से बचा हुआ खाना, गुरुदेव की मूर्ति का ध्यान करना और गुरुनाम का जप करना चाहिए।'

जो गुरुपादोदक का सेवन करता है, उसके लिए अमृत तो एक साधारण वस्तु है। गुरुपूजा ही सार्वभौम महापूजा है ऐसा 'गुरुगीता' कहती है। सर्वतीर्थ, सर्वदेवता और अधिक क्या कहा जाय, विश्वव्यापी, विश्वाकार ब्रह्म श्रीसद्गुरुदेव ही हैं।

साधक को अपने मंत्र का सम्मान से, सत्कार से, श्रद्धा से, पूर्ण प्रेम से अनुष्ठान करते रहना चाहिए। सद्गुरुकृपा कभी व्यर्थ नहीं जाती। चाहे प्रकृति में परिवर्तन हो जाय - सूर्य तपना छोड़ दे, चंद्रमा शीतलतारहित हो जाय, जल बहना त्याग दे, दिन की रात और रात का दिन ही क्यों न हो जाय किंतु एक बार हुई सद्गुरु की कृपा व्यर्थ नहीं जाती।

यदि इस जन्म-मृत्यु रूप संसार से मुक्ति नहीं हुई, साधना अधूरी रह गयी तो यह कृपा शिष्य के साथ-साथ जन्म-जन्मांतरों में भी रहती है। किसी देश या किसी लोक में जाने पर भी जैसे, मानव का पातकपुंज फल देने के लिए अवसर ढूँढ़ता रहता है, वैसे ही शिष्य पर हुई कृपा शिष्य के पीछे-पीछे ही फिरती है। इसलिए आप धैर्य से, उत्साह से, प्रेम से साधन के अभ्यास में लगे रहें।

साधक दिन-प्रतिदिन जितनी गुरुभक्ति बढ़ाता है, जितना-जितना सद्गुरु के चित्त के साथ एकाकार होता है, जितना-जितना उनमें तन्मय होकर मिलता है, उतनी ही उच्च-उज्ज्वल प्रेरणाएँ, उत्कृष्ट भाव और निर्विकारी जीवन को प्राप्त करता है।

सद्गुरु मंत्र द्वारा, स्पर्श द्वारा या दृष्टि द्वारा शिष्य के जीवन में प्रवेश करके उसके समस्त पातकों को भस्म कर देते हैं, आंतरिक मल को धो देते हैं। इसीलिए गुरु-सहवास, गुरु-संबंध, गुरु-आश्रमवास, गुरुतीर्थ का पान, गुरुप्रसाद, गुरुसेवा, गुरु-गुणगान, उनके दिव्य स्पंदनों का सेवन, गुरु के प्राण-अपान द्वारा 'सोऽहम्' स्वर के साथ निकलनेवाली चैतन्य प्रभा की किरणें और गुरु-आज्ञापालन शिष्य को पूर्ण परमात्म-पद की प्राप्ति करा देने में समर्थ हैं, इसमें क्या आश्चर्य ?

उन सद्गुरु से हम कैसा व्यवहार करें, कैसे प्रेम करें, उनके उपकार को कैसे चुकायें, उनका सम्मान कैसे करें, उनकी पूजा कैसे करें ?

हे प्यारे सद्गुरुदेव ! आप हमारे मलिन, अशुचि, विकारी, भौतिक शरीर में भी भेदभाव नहीं देखते, शुद्धाशुद्ध नहीं देखते, रोगारोग नहीं देखते। आप करुणासिंधु हमारे पापों को, तापों को, हमारी अशुचि को धो डालते हैं। नाड़ी-नाड़ी में, रक्त के कण-कण में शक्ति के रूप में प्रविष्ट होकर उन्हें क्रियाशील बनाते हैं। आपका शक्तिपात शरीर के अंग-अंग में, अच्छे-बुरे स्थानों में, नाड़ियों के मैल-भरे, रोग-भरे कफ-पित्त-वातरूप दोषों को अंतर यौगिक क्रियाओं द्वारा साफ करता है। अंतःकरण को पवित्र व निर्मल बनाता है।

ऐसे सद्गुरु के समान कौन मित्र, कौन प्रेमी, कौन माँ और कौन देवता है ? ऐसे सद्गुरु का हम क्या दासत्व कर सकते हैं ? जिन सद्गुरु ने हमारे कुल, जाति, कर्माकर्म, गुण-दोष आदि देखे बिना हमको अपना लिया, उन सद्गुरु को हम दे ही क्या सकते हैं ? शक्तिपात करके उन्होंने अपनी करुणा-कृपा सिंच दी, उसके बदले में हम क्या दे सकते हैं ? उनका कितना उपकार है, कितना अनुग्रह है, कितनी दया है !

(संदर्भ : 'चित्शक्ति विलास')

आध्यात्मिक पहेलियाँ

* अठारह वर्ष की अल्पायु में आत्मसाक्षात्कार किया।
चलाकर जड़ वृक्ष नीम को एक अद्भुत चमत्कार किया॥
सादा जीवन उच्च विचार कर जग में जिनने विहार किया।
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ होकर भी व्रत सेवा का स्वीकार किया॥
है कौन विभुति ऐसीं जिन्हें देवताओं ने भी नमस्कार किया ?

* नन्हीं उम्र में पा गुरु-आशिष जो हुए जीवन्मुक्त।
लिखा ग्रंथ ज्ञानेश्वरी गीता जो कुंडलिनी योग से युक्त॥
देख चलाते चबुतरे को चांगदेव हुए अनुरक्त।
उम्र इक्कीस में ली समाधि ये कौन ऐसे विरक्त ?

गुरु नानकजी

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

गुरु नानकदेव यात्रा करते-करते सिंहलद्वीप पहुँचे, जिसे अब श्रीलंका कहते हैं। नानकजी का उपदेश सुनकर वहाँ बहुत लोगों को चित्त की शांति प्राप्त हुई।

नानकजी जैसे पहुँचे हुए संत के आगमन से सिंहल देश का भाग्य चमकने लगा। एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे... ऐसा करते-करते राजदरबार तक नानकजी की महिमा पहुँच गयी।

सिंहल देश के तत्कालीन विलासी राजा ने जाँच करवायी कि नानकजी कहाँ ठहरे हुए हैं। फिर रूप-लावण्य में एक से बढ़कर एक ऐसी कई ललनाओं को बुलाकर आदेश दिया : ''आज रात को तुम उस संत के पास जाओ और अपने सौंदर्य से उनकी सेवा करो। जैसे, मेरे राज्य में तुम मुझे प्रसन्न करने में लगी रहती हो, ऐसे ही उस संत को प्रसन्न करने में लग जाओ और उन्हें अपना बना लो।''

नानकजी के पास एक दिन कुछ सुंदरियाँ गयीं, दूसरे दिन दूसरी गयीं, तीसरे दिन तीसरी गयीं लेकिन सब वापस लौट आयीं। आखिर सिंहलनरेश को हुआ कि 'ये कैसे गजब के संत हैं! मैं उनको सुखी करना चाहता हूँ, बिना माँगे ही ऐश की ज़िंदगी देना चाहता हूँ और वे सुख की महिमा नहीं जानते!'

उसको पता ही नहीं था कि अन्तरात्मा का सुख कितना ऊँचा है! उसमें इन संत की स्थिति है। नानकजी कितने पहुँचे हुए संत हैं। भोगी को क्या पता कि योगी के चित्त में कैसा अनुपम सुख होता है और योगी को क्या पता कि भोगी की मलिन वासनाओं का छोर कहाँ पर है?

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं
मनोरथाः दुर्जनमानवानाम्।
पुरुषस्य भाग्यं स्त्रिया चरित्रं
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥

'राजा का चित्त, कंजूस का धन, दुर्जनों का मनोरथ, पुरुष का भाग्य और स्त्रियों का चरित्र देवता तक नहीं जान पाते तो मनुष्यों की तो बात ही क्या है?'

आखिर राजा को नानकजी के पास आना पड़ा। राजा ने नानकजी से पूछा :

''क्या आपके हृदय में स्नेह नहीं है? क्या आपके हृदय में प्रीति नहीं है?''

नानकजी ने कहा : ''स्नेह भी है और प्रीति भी।''

राजा : ''मैं एक-से-एक सुंदरियाँ भेजकर थक गया, क्या इन सुंदरियों से आपका मन नहीं बहलता? क्या आपको सौंदर्य प्रिय नहीं है? क्या आप रूखी जिंदगी गुजारते हैं? क्या आपके पास जीने का ढंग नहीं है?''

नानकजी : ''उन ललनाओं का प्यार मैंने बहुत देखा, लेकिन उन ललनाओं की गहराई में जो प्यारा अकालपुरुष है, मुझे उसकी याद आ जाती है। इन हाड़-मांस के शरीरों में जो इतना स्नेह बरसाता है, वह अकालपुरुष कैसा होगा? उसकी याद आते ही काम राम में बदल जाता है तो मैं क्या करूँ?''

राजा ने देखा कि ये संत वास्तव में ऊँची कमाई के धनी हैं।

वह विनम्रभाव से क्षमा माँगते हुए नानकजी के चरणों में गिर पड़ा...

कैसे होते हैं अलख के वे औलिया! लोग उन्हें आजमाने के लिए कैसे-कैसे हथकंडे अपनाते हैं, किंतु वे महापुरुष स्वयं तो अडिग रहते ही हैं, औरों को भी ईश्वरीय पथ पर अग्रसर करते रहते हैं।

✲

एक बार एक **निर्धन** व्यक्ति नानकजी के पास आकर बोला :

''महाराज! क्या मुझे कोई अच्छा गुरु मिलेगा?''

नानकजी : ''हाँ, मिल जायेगा।''

''कौन है ?''

''चंदु बढ़ई । तुम उसके पास जाओ, वह बतायेगा।''

वह व्यक्ति चंदु बढ़ई के पास गया तो चंदु बढ़ई अर्थी बना रहा था।

उस व्यक्ति ने पूछा : ''आप यह अर्थी किसके लिए बना रहे हैं ?''

चंदु बढ़ई : ''मेरा बेटा मर गया है, उसके लिए बना रहा हूँ।''

व्यक्ति : ''गुरु नानकजी तो आपकी प्रशंसा कर रहे थे। आपका बेटा कैसे मर गया ?''

चंदु बढ़ई : ''गुरु साहब की यही इच्छा थी।''

''गुरु साहब की ऐसी-कैसी इच्छा ?''

''जो गुरु साहब की इच्छा होगी, वही होगा; इसमें क्या है ?''

''आप तो गुरु को इतना मानते हैं, फिर भी आपका लड़का...''

''दुर्घटना में उस पर रथ का पहिया चढ़ गया, और वह मर गया।''

''आप तो इस तरह कह रहे हैं, जैसे किसी पराये का बेटा मरा हो !''

''पराया और अपना यह सब मन की कल्पना है। तुम पूछना क्या चाहते हो, यह बताओ।''

''अब मैं क्या पूछूँ ? आप ही बता दीजिये।''

''और तो मैं क्या बताऊँ, तुम्हें ८ दिन में फाँसी लगनेवाली है।''

''यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं तो अच्छा गुरु खोजने को चला था और आप कह रहे हैं कि ८ दिन में फाँसी लगनेवाली है ?''

''गुरु साहब की यही मर्जी है।''

''गुरु की मर्जी से आपका बेटा मर गया और उन्हींकी मर्जी से ८ दिन में मुझे फाँसी लग जायेगी ?''

''हाँ।''

''मैं नहीं मरूँगा।'' यह कहकर वह व्यक्ति भागता-भागता जंगल में चला गया। उसने सोचा कि अपने गाँव में रहूँगा तो ही फाँसी लगेगी, इस जंगल में मुझे कौन फाँसी पर चढ़ायेगा ? दिनभर चलता और रात को आराम करता। इस तरह करते-करते ७ दिन बीत गये। आठवें दिन वह एक पेड़ के नीचे लेटा तो उसे नींद आ गयी।

आधी रात को कुछ चोर राजमहल में चोरी करके वहाँ से जा रहे थे। उन्होंने अपना सारा सामान बाँट लिया, केवल एक माला बाकी रह गयी। उन्होंने सोचा कि 'बँटवारे के लिए इस माला को क्यों तोड़ें ? इस पेड़ के नीचे कोई योगी सो रहे हैं, क्यों न यह माला उन्हींको भेंट चढ़ा दें ?'

चोर उस व्यक्ति के गले में माला डालकर चले गये। वह माला राजपरिवार की थी। पीछे से राजा के सिपाही आये। राजा की मोतियों की माला देखकर सिपाहियों ने उसे ही चोर समझकर पकड़ लिया और राजा के पास ले जाकर कहा : ''सारा माल इसीके पास है, किंतु यह बताता नहीं है।''

राजा : ''इसे फाँसी पर चढ़ा दो।''

जब उसे फाँसी के तख्ते पर लाया गया, तब उससे पूछा गया : ''तेरी अंतिम इच्छा क्या है ?''

उसने कहा : ''मेरी अंतिम इच्छा चंदु बढ़ई से मिलने की है, क्योंकि उसीने मुझे बताया था कि ८ दिन में मुझे फाँसी लगनेवाली है।''

चंदु बढ़ई को बुलाया गया। चंदु बढ़ई नानकजी के भक्त हैं यह जानकर उस व्यक्ति को उनसे थोड़ी देर बात करने की छूट मिल गयी। वह व्यक्ति चंदु बढ़ई के आगे गिड़गिड़ाने लगा : ''कुछ भी करके मुझे इस संकट से बचा लीजिये।''

चंदु बढ़ई ने कहा : ''गुरु साहब से प्रार्थना करो। उनकी मर्जी होगी तो आप बच जाओगे।''

वह व्यक्ति प्रार्थना करने लगा। इतने में ही गुप्तचर सूचना लेकर आये कि 'असली चोर पकड़े गये हैं।'

राजा : ''उस निर्दोष व्यक्ति को छोड़ दिया जाय।''

राजाज्ञा से उस व्यक्ति को छोड़ दिया गया।

जो गुरु की मर्जी में अपनी मर्जी मिला देते हैं, उनके द्वारा भी प्रकृति ऐसे-ऐसे कार्य करवा देती है कि लोग दंग रह जाते हैं तो स्वयं सद्गुरु की तो बात ही क्या है ?

*

भक्त भद्रतनु

प्राचीन काल की बात है । पुरुषोत्तमपुरी में भद्रतनु नाम का एक ब्राह्मण रहता था । वह देखने में बहुत ही सुंदर, सदाचारी, प्रिय और मधुर बोलनेवाला था और पवित्र कुल में उत्पन्न हुआ था । माता-पिता बचपन में ही उसे छोड़कर परलोक सिधार गये थे । कोई संरक्षक और मार्गदर्शक न रहने से वह धीरे-धीरे कुसंगति में पड़ गया ।

जवानी के जोशीले खून के कारण मनुष्य विवेकहीन हो जाता है, फिर यदि कोई सँभालनेवाला न रहे, पास में पैसे हों और कुसंगति मिल जाय, तब तो उसे पूरा ही उन्माद हो जाता है । भद्रतनु का भी बुरे संग में पड़ने से पतन हो गया । सत्संग, स्वाध्याय और नित्यकर्म के त्याग से उसका जीवन सर्वथा उच्छृंखल हो गया । उसने ब्राह्मणाचार, सत्यभाषण, गुरु तथा अतिथि की पूजा आदि सभी सत्कर्म छोड़ दिये । धर्मनिंदा, परधन और परस्त्री में अनुराग, जुआ, चोरी और शराब आदि समस्त दोष क्रमशः उसमें आ गये । वह परलोक और ईश्वर का भय छोड़कर पूरा पाखंडी बन गया ।

शहर से कुछ ही दूरी पर सुमध्या नाम की एक परम सुंदरी वेश्या रहती थी । बुरे संग में पड़ने के कारण उसका पतन हो गया था और उसे घृणित वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ी थी, परंतु उसके मन में अपनी इस वृत्ति के प्रति बड़ी घृणा थी । मन-ही-मन वह अपनी पतित अवस्था पर सदा पछताया करती और उससे छूटने का मार्ग ढूँढ़ा करती थी । वह प्रयत्न करती, परंतु परिस्थितिवश सफल न होती । एक बार मनुष्य का पतन हो जाने पर फिर उत्थान होना बड़ा कठिन होता है । भारी भीड़ में जो गिर पड़ता है, वह प्रायः भीड़ में कुचला ही जाता है, उठकर खड़ा होने तक का उसे अवकाश ही नहीं मिलता । कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति सुमध्या की थी, परंतु उसने हिम्मत नहीं हारी और सतत चेष्टा में लगी रही । उसके हृदय में धर्म, परलोक और ईश्वर के प्रति बड़ी श्रद्धा थी । वह एकांत में रो-रोकर सरल अंतःकरण से सदा भगवान से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करती थी ।

भद्रतनु का सुमध्या पर बड़ा अनुराग था । अवश्य ही उसके अनुराग में विषयलंपटता की ही प्रधानता थी, वह उसके रूपानल का पतंग बन रहा था, परंतु सुमध्या की ऐसी बात नहीं थी ।

वह समय-समय पर भद्रतनु को बड़े प्रेम से समझा-बुझाकर जुआ, शराब आदि दोषों के भयानक परिणाम बतलाकर उसे दोषमुक्त करने का प्रयत्न भी किया करती थी । उसके मन में ब्राह्मणकुमार के पतन पर बड़ा दुःख था और यद्यपि सुमध्या के पास आने से पहले ही भद्रतनु व्यभिचारपरायण हो चुका था, परंतु, सुमध्या उसके इस पतन में भी अपने को ही कारण मानकर हृदय में जला करती थी । परंतु पेट का सवाल था और उसे यह भी आशा नहीं होती थी कि मेरे समझाने से भद्रतनु मान ही जायेगा और अन्यत्र कहीं भी मुँह काला करने नहीं जायेगा । इसलिए वह बार-बार मन मसोसकर रह जाती और भद्रतनु को व्यभिचार छोड़ने के लिए कुछ भी नहीं कहती ।

आज भद्रतनु के पिता का श्राद्ध है । श्राद्ध में श्रद्धा-भक्ति न होने पर भी लोक-लज्जा के भय से भद्रतनु श्राद्ध करवा रहा है, परंतु उसका चित्त सुमध्या में लगा है । ज्यों-ज्यों विलंब होता है, त्यों ही-त्यों उसके चित्त की चंचलता और अकुलाहट बढ़ती जा रही है ।

श्राद्ध के कार्य से किसी तरह निपटकर वह सुमध्या के घर पहुँचा । अँधेरी रात थी, पानी बरस रहा था, परंतु कामवश उसे उस समय कुछ भी नहीं सूझा । सुमध्या के घर पहुँचकर वह कहने लगा : ''प्रिये ! आज मेरे पिता का श्राद्ध था, इससे

मुझे कुछ देर हो गयी परंतु मेरा दिल ही जानता है कि मैं इतनी देर किस तरह वहाँ रहा। श्राद्ध में मेरी रत्तीभर भी श्रद्धा नहीं है, न मैं किसी देवता या तीर्थ को मानता हूँ। मुँहजले गाँव के लोगों के डर से मुझे श्राद्ध का आडंबर करना पड़ा। मेरा तो यज्ञ, योग, जप, तप, कुल, यश, नीति सब कुछ तुम्हीं हो। मैं तुम्हारा बिना मोल का गुलाम हूँ, तुम जो कहो वही करूँगा, परंतु तुम्हारे बिना एक क्षण भी मुझसे नहीं रहा जाता। प्यारी! तुम्हारे मुखचंद्र के सामने चंद्रमा बेचारा क्या चीज है ? मुझे न तो किसी तीर्थ की जरूरत है, न किसी देवता की आवश्यकता। मैं तो तुम्हारे ही प्रेमतीर्थ में नहाकर स्वर्गसुख का उपभोग करूँगा। देवता परलोक में फल देते हैं, परंतु तुम्हारी कृपा से तो मुझे यहाँ नंदनवन का आनंद प्राप्त है, मुझे स्वीकार करो।''

कामियों के प्रलाप का यह एक नमूना है।

सुमध्या सुन रही थी और मन-ही-मन भद्रतनु की मूर्खता पर तरस खा रही थी। उसने सोचा : 'कैसा मोह है ! हाड-मांस के थैले पर कैसी आसक्ति है ! काम की कैसी महिमा है ! कामी पुरुषों का कितना घोर पतन है, जो उन्होंने स्त्री के दोषपूर्ण शरीर का ही वर्णन करने में अपनी विद्या-बुद्धि का दुरुपयोग किया।

अब सुमध्या से नहीं रहा गया, उसने क्रोध में आकर कहा : ''रे ब्राह्मण ! तुझको धिक्कार है। तुझ जैसे पुत्र की अपेक्षा तो तेरे पिता का पुत्रहीन रहना अच्छा था, जो तू आज उनके श्राद्ध के दिन वेश्या के रूप पर मोहित होकर नरककुंड में कूदने आया है। तूने शास्त्र पढ़े थे, शास्त्रों के इन वचनों को क्या तू भूल गया कि जो मनुष्य श्राद्ध के दिन स्त्री-प्रसंग करता है, परलोक में उसके पितृगणों को और स्वयं उसको वीर्यभक्षण करना पड़ता है। मेरे शरीर में ऐसी कौन-सी सुंदर और पवित्र वस्तु है, जिस पर तू इतना पागल हो रहा है।

इस प्रकार के घृणित शरीर में तुझे सौंदर्य का मिथ्या भ्रम क्यों हो रहा है ? क्या मनुष्य-शरीर पाप कमाने के लिए ही मिला है ? अधोगति को पहुँचानेवाले इस घृणित वेश्या के शरीर में तेरी जितनी आसक्ति है, उतनी यदि भगवान में होती तो न मालूम अब तक तू कितनी ऊँची स्थिति पर पहुँच चुका होता।

अरे मूर्ख ! प्राणियों का जीवन यमराज के दंड के अधीन है। (चाहे जब मृत्यु आ जाती है) यह जानते हुए भी तू निर्भय होकर क्यों सदा पापों में लिप्त हो रहा है ? जीवन का क्या ठिकाना है ? यह तो जल के बुदबुदे के समान एक ही क्षण में ध्वंस हो जायेगा। यह जानकर भी तू नित्य ऐसे पाप क्यों कर रहा है ? 'मृत्यु' ये दो अक्षर जिसके ललाट पर लिखे हैं, वह प्राणी सब प्रकार क्लेश देनेवाले पाप न जाने क्यों करता है।

अहो, संसार में भगवान महाविष्णु की माया बड़ी बलवती है, जिससे लोग पापों में लगे रहकर उलटे हर्षित होते हैं। रे दुराशय ! तू अपने शरीर में पाप को स्थान मत दे। जैसे, अग्नि अपने आश्रित को दग्ध कर डालती है, उसी प्रकार पाप भी अपने आश्रित को भस्म कर डालते हैं।

अरे नामर्द ! विचार कर और अपने मन को मुझसे हटाकर भगवान में लगा दे। जो भगवान के शरण होकर भगवान को भजता है, वह भगवान की दुस्तर माया से सहज ही में तर जाता है। भगवान बड़े दयालु हैं, वे तुझे आश्रय देंगे।''

यह कहकर सुमध्या चुप हो गयी। उसका हृदय वैराग्य से पूर्ण हो गया। सुमध्या के वचनों ने भद्रतनु के मन पर जादू का काम किया। उसकी आँखें खुल गयीं। वह मन-ही-मन बड़ी गंभीरता से अपनी स्थिति पर सोचने लगा : 'हाय ! मैं महामूर्ख हूँ। एक वेश्या में जितना ज्ञान है, उतना भी मुझ दुरात्मा में नहीं है। मैंने ब्राह्मण के शुद्ध वंश में जन्म लेकर निरंतर आत्मा को पीड़ा पहुँचानेवाले पापों को ही बटोरा। जब मृत्यु निश्चित है, जब मृत्यु के बाद पाप का दंड भोगने के लिए यमराज के अधीन होना निश्चित है, तब मुझे पाप क्यों करना चाहिए ? हा ! मैंने तो जप, तप, हवन, वेदाध्ययन, ब्राह्मणाचार, अतिथिसेवन, गुरुभक्ति, द्विजार्चन, पितृयज्ञादि कर्म या भगवान श्रीपति की उपासना आदि कुछ भी नहीं किया। हा ! मुझे उत्तम गति

क्योंकर मिलेगी ? इस प्रकार चिंता में डूबा हुआ भद्रतनु अपने को सचेत करनेवाली सुमध्या के प्रति पूज्य भाव से प्रणाम करके वहाँ से उठकर चुपचाप चल दिया। सुमध्या ने भी उसी क्षण से वेश्यावृत्ति छोड़कर सदा के लिए श्रीभगवान में मन को तल्लीन कर दिया।

भद्रतनु मन-ही-मन अपनी निंदा करता हुआ जिज्ञासु भाव से सर्वधर्मज्ञ महात्मा मार्कण्डेय के पास गया और उनके चरणों में प्रणाम करके कहने लगा : ''भगवन् ! मैं पापियों का सरदार हूँ। मैंने ब्राह्मणवंश में जन्म लेकर भी ब्राह्मणाचार का पालन नहीं किया। सदा परहिंसा, परधन और परस्त्री के सेवन में ही लगा रहा। मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं। पुण्यकर्म तो कभी भूलकर भी नहीं किया। अब मेरा इस घोर और भीषण दुःखप्रद संसार-सागर से कैसे निस्तार होगा ? हे ब्रह्मविद्श्रेष्ठ ! आप कृपामय हैं। मैं आपकी शरण हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।''

मार्कण्डेयजी ने भद्रतनु की बात सुनकर बड़े ही स्नेह से कहा : ''हे ब्राह्मण ! तुम पाप करनेवाले होकर भी बड़े ही पुण्यात्मा प्रतीत होते हो। पापों की स्मृति, पश्चात्ताप, पापों से घृणा, पाप छोड़ने का निश्चय और संसार-सागर से तरने की जिज्ञासा बड़े पुण्यबल से हुआ करती है। संसार में अधिकांश लोग तो पाप को पाप ही नहीं समझते और हर्षपूर्वक दिन-रात विषयसेवन तथा पापाचार में ही लगे रहते हैं। तुम्हारी ऐसी पवित्र बुद्धि हुई है, इससे मालूम होता है भगवान तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। जो पहले पाप करके भी पुनः पाप से निवृत्त होकर भगवद्भजन में लग जाता है, उसे अच्युतसेवी उत्तम पुरुष ही कहना चाहिए। भगवान अपने भक्त को पाप में पड़े हुए देखकर उसे बचाने के लिए और सद्गति की प्राप्ति कराने के लिए उत्तम बुद्धि दिया करते हैं। तुमने प्रत्येक जन्म में भगवान की पूजा की है। अतएव शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है, परंतु मैं इस समय अनुष्ठान में लगा हूँ, इसलिए तुम्हें विशेष बातें नहीं बता सकूँगा। तुम दांत नामक द्विजराज के पास जाओ वे सर्वतत्त्वज्ञ हैं। वहीं तुमको इच्छित उपदेश मिलेगा।''

मार्कण्डेयजी की आज्ञानुसार भद्रतनु दांत मुनि के परम रम्य और पवित्र आश्रम में गया। दांत मुनि शिष्यों से घिरे हुए आश्रम में विराजमान थे। भद्रतनु ने वहाँ जाकर दांत मुनि के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और स्तवन के बाद दांत मुनि के पूछने पर सरल, निःसंकोच भाव से उनसे कहा : ''हे महाभाग ! मैं जाति का ब्राह्मण हूँ, परंतु ब्राह्मण के आचार से सर्वथा वर्जित हूँ। मेरा नाम भद्रतनु है। मैंने जीवनभर पाप-ही-पाप किये हैं। हे ब्रह्मन् ! आप सर्वतत्त्वज्ञ हैं, मुझे कृपापूर्वक बतलाइये कि मुझ पापी के लिए संसार-बंधन से छूटने का क्या उपाय है ?''

दयालु दांत मुनि ने स्नेह के साथ भद्रतनु से कहा : ''भाई ! तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई, यह भगवान की बड़ी कृपा है। मैं अब तुम्हें वे उपाय बतला रहा हूँ जिनके करने से जीव का संसार-बंधन सहज ही कट जाता है। उपाय ये हैं :

(१) पाखंड के संसर्ग का बिलकुल त्याग करो।

(२) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, असत्य और परहिंसा का यत्नपूर्वक त्याग करो।

(३) दया, शांति और दमयुक्त (गलत जगह से अपनी इंद्रियों को बलपूर्वक रोकना) हो सर्वत्र समदर्शन करते हुए सदा भगवान श्री केशव के शरण होकर उनकी आराधना करो।

(४) भक्तियुक्त होकर निरंतर भगवान श्री विष्णु के नामों को स्मरण करते हुए श्रेष्ठ अहोरात्र-व्रत करो।

(५) प्रतिदिन अन्नदान, जलदान और नित्य पंचमहायज्ञ करो।

(६) श्रीहरि की कथा सुनो और उनके द्वादशाक्षर मंत्र का श्रद्धापूर्वक जप करो। इन साधनों के द्वारा तुम्हें सर्वोत्तम ज्ञान की प्राप्ति होगी, जिसके द्वारा तुम मुक्त हो जाओगे।''

दांत मुनि के इन वचनों को सुनकर भद्रतनु ने कहा : ''भगवन् ! मैं अति मूढ़ हूँ, मुझे सबका विवरण स्पष्ट करके समझाइये। मैं आपकी कृपा से अवश्य ही परम गति को प्राप्त करूँगा।''

(क्रमशः)

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

शिवजी बने ज्योतिषी...

भगवान शंकर ने पार्वतीजी को एक प्रसंग सुनाते हुए कहा :

जब भगवान श्रीराम का प्राकट्य हुआ था, तब मैं और काकभुशुंडिजी उनके दर्शन के लिए अयोध्या गये; किंतु अयोध्या की भीड़भाड़ में हम उनके महल तक न जा पाये। मैंने सोचा कि अब कोई युक्ति आजमानी पड़ेगी ताकि हमें प्रभु के दर्शन हों।

तब मैंने एक ज्योतिषी का और काकभुशुंडिजी ने मेरे शिष्य का रूप लिया। वे शिष्य की तरह मेरे पीछे-पीछे चलने लगे। मैंने मन-ही-मन श्रीरामजी से प्रार्थना की कि 'हे प्रभु ! अब आप ही दर्शन का कोई सुयोग बनाइये।'

उधर राजमहल में श्रीरामजी लीला करके बहुत रोने लगे। कौशल्या-दशरथ आदि सब बड़े चिंतित हो उठे। कई वैद्यों को बुलाया गया लेकिन श्रीरामजी का रुदन बंद ही न हुआ। दशरथ ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि 'अगर ऐसे कोई संत-महात्मा या ज्योतिषी मिल जायें जो श्रीराम का रुदन बंद करवा सकें तो तुरंत उन्हें राजमहल में आदरसहित ले आयें।'

यह बात हम तक भी पहुँची। हमने कहा :

''हम अभी-अभी हिमालय से आ रहे हैं और ज्योतिष विद्या भी जानते हैं। बच्चे को चुप कराना तो हमारे बायें हाथ का खेल है।''

लोग हमें बड़े आदर से राजमहल तक ले गये। मैंने कहा : ''बालक को मेरे सामने ले आयें। मेरे पास ऐसी सिद्धि है कि मेरी नजर पड़ते ही वह चुप हो जायेगा।''

श्रीरामजी को लाया गया। मैंने उन्हें देखा तो वे चुप हो गये, किंतु मैं रोने लगा। कौशल्या माँ को मेरे प्रति सहज स्नेह जाग उठा कि कितने अच्छे महाराज हैं, मेरे बालक का रुदन खुद ले लिया ! वे मुझे भेंट-पूजा देने लगीं।

मैंने कहा : ''भेंट-पूजा तो फिर देखी जायेगी, मैं ज्योतिषी भी हूँ। पहले तुम्हारे लाला का हाथ तो देख लूँ।''

कौशल्या माँ ने अपना बालक मुझे दे दिया। मैंने उन परात्पर ब्रह्म को अपने हाथों में लिया। काकभुशुंडिजी ने मुझे इशारा किया कि 'देखना, प्रभु ! कहीं मैं न रह जाऊँ।'

मैंने उनसे कहा : ''श्रीचरण तो तुम्हारी ही ओर हैं।''

फिर मैंने श्रीरामजी के चरण छुए और रेखाएँ देखते हुए कहा :

''यह बालक आपके घर में नहीं रहेगा।''

कौशल्याजी घबरा गयीं और बोलीं :

''क्या हमेशा के लिए घर छोड़कर चला जायेगा ?''

मैंने कहा : ''नहीं, गुरुदेव के साथ जायेगा तो सही, लेकिन थोड़े ही दिनों में, पृथ्वी पर कहीं न मिले ऐसी राजकुमारी के साथ शादी करके वापस आ जायेगा।''

कौशल्याजी बड़ी प्रसन्न हुईं और हमें दक्षिणा में बहुत-सी भेंट-पूजा देने लगीं। हमें तो करने थे दर्शन; इसीलिए हमने ज्योतिषी की लीला की थी। जब स्वांग रचा ही था तो उसे निभाना भी था, अतः हम दक्षिणा लेकर लौट पड़े।

❊

पीपक मुनि और ब्रह्माजी

कश्यप कुल में एक कुमार था, जिसका नाम था पीपक। वह तपस्या का बड़ा धनी था। मात्र १५ वर्ष की अवस्था में ही वह 'पीपक मुनि' होकर पूजा जा रहा था।

दूर-दूर से बड़े-बड़े सेठ-साहूकार उसके दर्शनों के लिए आते थे। यहाँ तक कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी पीपक मुनि के दर्शन करके

अपने को भाग्यशाली मानते थे।

कुमार पीपक मुनि ने ध्यान के द्वारा एकाग्रता पा ली थी। वह एकाग्रता के द्वारा अपने मन का अनुसंधान करके दूसरे के मन के विचारों को जान लेता था। दूसरों के दुःख-दर्द मिटाने का सामर्थ्य भी उसमें आ गया था। इसीलिए लोग उसका बड़ा आदर करते थे।

लेकिन पीपक को पता नहीं था कि अभी तो आगे की बहुत-सी यात्रा बाकी है। उसे अभिमान आ गया कि 'मैं बहुत बड़ा तपस्वी हूँ। किसीको कुछ छूकर प्रसाद के रूप में दे देता हूँ तो उसका काम बन जाता है। किसीके सिर पर हाथ रख देता हूँ तो उसका भला हो जाता है...'

पीपक की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ब्रह्माजी उसे वरदान देनेवाले थे, लेकिन उसमें अभिमान आता देखकर ब्रह्माजी ने सोचा कि 'इसे सही राह पर लाना पड़ेगा। तपस्या करके परमेश्वर को पाने की जगह यह वाहवाही में ही रुक गया है।' अतः करुणा करके ब्रह्माजी ने सारस पक्षी का रूप लिया और जहाँ पीपक रहता था, वहाँ गये।

ब्रह्माजी ने सारस के रूप में जाकर मानवीय भाषा में पीपक से कहा :

''कश्यपकुल में उत्पन्न पीपक !''

पीपक ने देखा कि सारस के मुँह से मनुष्य की भाषा ! वह ध्यान से सुनने लगा। ब्रह्माजी ने कहा :

''पीपक ! वाहवाही के लोभ में प्रभुमार्ग त्यागा ? मुनि कहलाया पर मनन न किया ? मुझ प्रभु को न पाया ?''

पीपक ने सोचा कि 'जरूर सारस के रूप में कोई दिव्यात्मा है, जो मुझे सचेत करने के लिए आयी है।' उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहा : ''हे सारस पक्षी का रूप धारण करनेवाले ! आप जो भी हों, मुझे सत्य का उपदेश देने की कृपा करें कि अब मैं क्या करूँ ?''

तब सारस रूपधारी ब्रह्माजी ने कहा : ''तेरा कुल महान है, तूने तप भी किया है लेकिन वाहवाही की लालच में तू अपने माता-पिता का आदर करना भूल गया। पीपक ! जिस माँ ने तुझे जन्म दिया, जिस पिता ने तेरा लालन-पालन किया उनकी करुणा-कृपा को भूलकर तू अपने को बड़ा मानता है ? अभी तेरा बड़प्पन बहुत दूर है।''

पीपक : ''अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ ?''

ब्रह्माजी : ''कुंडलपुत्र सुकर्मा महान ज्ञानी हैं और उनका आश्रम कुरुक्षेत्र में है। यदि तुम अपना उद्धार करना चाहते हो तो उनकी सेवा में पहुँच जाओ।''

सारस पक्षीरूपी ब्रह्माजी का उपदेश पाकर पीपक कुरुक्षेत्र में स्थित महाज्ञानी कुंडलपुत्र सुकर्मा के आश्रम में गये और अपने कल्याण का उपाय पूछा।

सुकर्मा ने कहा : ''जो बालक प्रतिदिन अपनी माता को प्रणाम करता है, उसे सब तीर्थों का फल प्राप्त होता है और जो प्रतिदिन अपने पिता को प्रणाम करता है, उसे देवलोक की यात्रा करने का फल मिलता है। माता-पिता तो बच्चे पर वैसे ही प्रसन्न होते हैं, लेकिन बच्चा जब प्रणाम करता है, तब माता-पिता के अंदर छुपा हुआ परमात्मदेव प्रसन्न होकर आशीर्वाद बरसाता है।

मुझे मेरे सद्गुरुदेव ने बताया था कि तप से जो ऋद्धि-सिद्धि और शक्तियाँ आती हैं, वे अंतःकरण में रहती हैं। वाहवाही शरीर की होती है और शरीर तो नश्वर है। इसलिए शरीर में छिपे परमात्मदेव का ज्ञान पाकर मुक्त हो जाना चाहिए।

उसी परमात्मदेव के लिए जप, ध्यान आदि करना चाहिए। उसी परमात्मदेव का ज्ञान पाने के लिए माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। उसी आत्मज्ञान के लिए गुरुद्वार पर रहकर सेवा करनी चाहिए।

हे कश्यपकुल के पीपक मुनि ! आपको तपस्या से प्राप्त शक्तियों पर बहुत अभिमान आ गया था, तब सारस के रूप में आकर दयालु भगवान ब्रह्माजी ने आपको मेरे पास भेजने की कृपा की - यह भी मैं आपको देखकर जान गया।''

पीपक तो दंग रह गया कि इन्हें इन सब बातों का पता कैसे चला ! उसका हृदय अहोभाव से भर गया और उसने सुकर्माजी से प्रार्थना की : ''कृपा कीजिये, आप मुझे आपके आश्रम में थोड़े समय

तक रहने की अनुमति दीजिये ताकि यहाँ रहकर मैं आपकी सेवा कर सकूँ और आत्मज्ञान का उपदेश पाकर मुक्त हो सकूँ।''

दयालु कुंडलपुत्र सुकर्मा ने पीपक को अपने आश्रम में रहने की अनुमति दे दी। वहाँ रहकर पीपक सुकर्माजी के बताये मार्ग के अनुसार साधना-सेवा में लग गये और समय पाकर उस आत्मज्ञान को उपलब्ध हो गये, जिसे पाकर मनुष्य के सारे द्वन्द्व, सारी चिंताएँ, सारे शोक, सारे भय, सारे दुःख सदा के लिए मिट जाते हैं।

महात्मा की कृपा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

बिहार प्रांत की बात है :

एक लड़के के पिता मर गये थे। वह लड़का करीब १८-१९ साल का होगा। उसका नाम था प्रताप। उसने अपनी भाभी से कहा : ''भाभी ! जरा नमक दे दे।''

भाभी : ''अरे, क्या कभी नमक माँगता है तो कभी सब्जी माँगता है ? इतना बड़ा बैल जैसा हुआ, कमाता तो है नहीं। जाओ, जरा कमाओ, फिर नमक माँगना।''

लड़के के दिल को चोट लग गयी। उसने कहा : ''अच्छा, भाभी ! कमाऊँगा तभी नमक माँगूँगा।''

वह उसी समय उठकर चल दिया। पास में पैसे तो थे नहीं। उसने सुन रखा था कि मुंबई में कमाना आसान है। वह बिहार से ट्रेन में बैठ गया और मुंबई पहुँचा। काम-धंधे के लिए इधर-उधर भटकता रहा। परंतु अनजान आदमी को कौन रखे ? आखिर भूख-प्यास से व्याकुल होकर रात में एक शिवमंदिर में पड़ा रहा और भगवान से प्रार्थना करने लगा कि 'हे भगवान ! अब तू ही मेरी रक्षा कर।'

दूसरे दिन सुबह हुई। थोड़ा-सा पानी पीकर निकला, दिनभर घूमा परंतु कहीं काम न मिला। रात्रि को पुनः सो गया। दूसरे दिन भी भूखा रहा। ऐसा करते-करते तीसरा दिन हुआ।

हर जीव सच्चिदानंद परमात्मा से जुड़ा है। जैसे, शरीर के किसी भी अंग में कोई जंतु काटे तो हाथ तुरंत वहाँ पहुँच जाता है क्योंकि वह अंग शरीर से जुड़ा है, वैसे ही आपका व्यष्टि श्वास समष्टि से जुड़ा है। उस लड़के के दो दिन तक भूखा-प्यासा रहने पर प्रकृति में उथल-पुथल मच गयी।

तीसरी रात्रि को एक महात्मा आये और बोले :

''बिहारी ! बिहारी ! बेटा, उठ । तू दो दिन से भूखा है । ले, यह मिठाई खा ले । कल सुबह नौकरी भी मिल जायेगी, चिंता मत करना । सब भगवान का मानना, अपना मत मानना ।''

महात्मा लंगोटधारी थे । उनका वर्ण काला व कद ठिंगना था । लड़के ने मिठाई खायी । उसे नींद आ गयी । सुबह काम की तलाश में निकला तो एक हलवाई ने नौकरी पर रख लिया । लड़के का काम तो अच्छा था, स्वभाव भी अच्छा था । प्रतिदिन वह प्रभु का स्मरण करता और प्रार्थना करता । हलवाई को कोई संतान नहीं थी तो उसीको अपना पुत्र मान लिया । जब हलवाई मर गया तो वही उस दुकान का मालिक बन गया ।

अब उसने सोचा कि 'भाभी ने जरा-सा नमक तक नहीं दिया था, उसे भी पता चले कि उसका देवर लाखों कमानेवाला हो गया है ।' उसने ५ हजार रुपये का ड्राफ्ट भाभी को भेज दिया ताकि उसको भी पता चले कि साल-दो साल में ही वह कितना अमीर हो गया है । तब महात्मा स्वप्न में आये और बोले कि 'तू अपना मानने लग गया ?'

उसने इसे स्वप्न मानकर सुना-अनसुना कर दिया और कुछ समय के बाद फिर से ५ हजार रुपये का ड्राफ्ट भेजा । उसके बाद वह बुरी तरह से बीमार पड़ गया ।

इतने में महात्मा पधारे और बोले : ''तू अपना मानता है ? अपना हक रखता है ? किसलिए तू संसार में आया था और यहाँ क्या करने लग गया ? आयुष्य नष्ट हो रहा है, जीवन तबाह हो रहा है । कर दिया न धोखा ! मैंने कहा था कि अपना मत मानना । तू अपना क्यों मानता है ?''

''गुरुजी ! गलती हो गयी । अब आप जो कहेंगे वही करूँगा ।''

महात्मा : ''तीन दिन में दुकान का पूरा सामान गरीब-गुरबों को लुटा दे । तू खाली हो जा ।''

उसने सब लुटा दिया । तब महात्मा ने कहा : ''चल, मेरे साथ ।''

महात्मा उसे अपने साथ मुंबई से कटनी ले गये । कटनी के पास लिंगा नामक गाँव है, वहाँ से थोड़ी दूरी पर बैलोर की गुफा है । वहाँ उसको बंद कर दिया और कहा : ''बैठ जा, बाहर नहीं आना है । जगत की आसक्ति छोड़ और एकाग्रता कर । एकाग्रता और अनासक्ति - ये दो पाठ पढ़ ले, इसमें सब आ जायेगा ।

जब तक ये पाठ पूरे न होंगे, तब तक गुफा का दरवाजा नहीं खुलेगा । इस खिड़की से मैं भोजन रख दिया करूँगा । डिब्बा रखता हूँ, वह शौचालय का काम देगा । उसमें शौच करके रोज बाहर रख दिया करना, सफाई हो जायेगी ।''

इस प्रकार वह वर्षों तक भीतर ही रहा । उसका देखना, सुनना, सूँघना, खाना-पीना आदि कम हो गया, आत्मिक बल बढ़ गया, शांति बढ़ने लगी । नींद को तो उसने जीत ही लिया था । इस प्रकार ११ साल हुए तब महात्मा ने जरा-सा तात्त्विक उपदेश दिया और दुनिया के सारे वैज्ञानिक और प्रधानमंत्री भी जिस धन से वंचित हैं, ऐसा महाधन पाकर वह बिहारी लड़का महापुरुष बन गया । महात्मा ने कहा : ''अब तुम मुक्तात्मा बन गये हो, ब्रह्मज्ञानी बन गये हो । मौज है तो जाओ, विचरण करो ।''

तब वे महापुरुष बिहार में अपने गाँव के निकट कुटिया बनाकर रहने लगे । किंतु वे किसीसे कुछ न कहते, शांति से बैठे रहते थे । सुबह ६ से १० बजे तक कुटिया का दरवाजा खुलता । इस बीच वे अपनी कुटिया की झाड़ू-बुहारी करते, खाना पकाते, किसीसे मिलना-जुलना आदि कर लेते, फिर कुटिया का दरवाजा बंद हो जाता ।

वे अपने मीठे वचनों से और मुस्कान से शोक, पाप, ताप हरनेवाले, शांति देनेवाले हो गये । ४ वेद पढ़े हुए लोग भी न समझ पायें ऐसे ऊँचे अनुभव के वे धनी थे । बड़े-बड़े धनाढ्य, उद्योगपति, विद्वान और बड़े-बड़े महापुरुष उनके दर्शन करके लाभान्वित होते थे ।

ब्रह्मनिष्ठ स्वामी अखंडानंदजी सरस्वती, जिनके चरणों में इंदिरा गाँधी की गुरु, माँ आनंदमयी कथा सुनने बैठती थीं, वे भी उनके दर्शन करने के लिए गये थे ।

ईश्वर के दर्शन के बाद भी आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार करना बाकी रह जाता है । रामकृष्ण परमहंस, हनुमानजी और अर्जुन को भी ईश्वर के दर्शन करने के बाद भी आत्मसाक्षात्कार करना बाकी था । वह उन्होंने कर लिया था - महात्मा की कृपा, अपने संयम और एकांत से । वह साक्षात्कार उ[illegible] बिहारी युवक को ही नहीं, देश के किसी भी युवक [illegible] हो सकता है । है कोई माई का लाल ?

राजा रुक्मांगद की एकादशी व्रत-निष्ठा

(गतांक का शेष)

राजा रुक्मांगद अपनी पत्नी और पुत्र के साथ भगवान के दिव्य शरीर में समा गये थे और सर्वसाधारण लोग भी राजा के सिखाये हुए मार्ग पर स्थित होकर एकादशी का व्रत करते थे।

राजा के पुरोहित वसु मोहिनी की सारी करतूत सुन क्रोधित होकर बोले : ''इस मोहिनी को धिक्कार है, इसके पापकर्म को भी धिक्कार है। यदि यह जलती हुई आग में कूद पड़े तो भी इस लोक में इसकी शुद्धि नहीं हो सकती है। यह धर्म का लोप करनेवाली है। जो इस मोहिनी के पक्ष में होगा, वह देवता हो या दैत्य, मैं उसे क्षणभर में भस्म कर दूँगा।''

ऐसा कहकर उन पुरोहित ने हाथ में जल लिया और मोहिनी की ओर क्रोधपूर्वक देखकर उसके मस्तक पर डाल दिया। मोहिनी जलकर भस्म हो गयी ! उसने ब्रह्माजी से अपना शरीर पुनः प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने पुरोहित से कहा कि 'अगर तुम आज्ञा दो तो मैं इसके लिए पुनः नूतन शरीर उत्पन्न कर दूँ।' पुरोहित ने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। ब्रह्माजी ने अपने कमंडलु के जल से मोहिनी के शरीर की राख को सींच दिया, जिससे मोहिनी पूर्ववत् शरीर-संपन्न हो गयी।

उसने अपने पिता ब्रह्मा को प्रणाम करके पुरोहित वसु के पैर पकड़ लिये और उन्हें प्रसन्न किया। दो घड़ी ध्यान में स्थित होकर उन्होंने मोहिनी की सद्गति का उपाय जान लिया और उसे गंगाजी तथा गया, प्रयाग, पुष्कर, मथुरा, वृंदावन आदि तीर्थक्षेत्रों का माहात्म्य और सेवन-विधि बतायी।

मोहिनी ने पुरोहित वसु के उपदेशानुसार तीर्थों का सेवन किया। समस्त तीर्थों का विधिपूर्वक सेवन करके अंत में वह यमुना के जल में समा गयी, फिर आज तक नहीं निकली। **(नारदपुराण से)**

हेमंत ऋतु में स्वास्थ्य-रक्षा

शीत ऋतु के दो माह, मार्गशीर्ष और पौष को हेमंत ऋतु कहते हैं। यह ऋतु विसर्गकाल अर्थात् दक्षिणायन का अंतकाल कहलाती है। इस काल में चंद्रमा की शक्ति सूर्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होती है। इसलिए इस ऋतु में औषधियाँ, वृक्ष, पृथ्वी की पौष्टिकता में भरपूर वृद्धि होती है व जीव-जंतु भी पुष्ट होते हैं। इस ऋतु में शरीर में कफ का संचय होता है तथा पित्तदोष का नाश होता है।

शीत ऋतु में जठराग्नि अत्यधिक प्रबल रहती है। अतः इस समय लिया गया पौष्टिक और बलवर्धक आहार वर्षभर शरीर को तेज, बल और पुष्टि प्रदान करता है। इस ऋतु में एक स्वस्थ व्यक्ति को अपनी सेहत की तंदुरुस्ती के लिए किस प्रकार का आहार लेना चाहिए ? शरीर की रक्षा कैसे करनी चाहिए ? आइये, उसे जानें :

❋ शीत ऋतु में खट्टा, खारा तथा मधु रस-प्रधान आहार लेना चाहिए।

❋ पचने में भारी, पौष्टिकता से भरपूर, गरिष्ठ और घी से बने पदार्थों का सेवन अधिक करना चाहिए।

❋ इस ऋतु में सेवन किये हुए खाद्य पदार्थों से ही वर्षभर शरीर की स्वास्थ्य-रक्षा हेतु शक्ति का भंडार एकत्रित होता है। अतः उड़दपाक, सालमपाक, सोंठपाक जैसे वाजीकारक पदार्थों अथवा च्यवनप्राश आदि का उपयोग करना चाहिए।

❋ जो पदार्थ पचने में भारी होने के साथ-साथ गरम व स्निग्ध प्रकृति के होते हैं, ऐसे पदार्थ लेने चाहिए।

❋ दूध, घी, मक्खन, गुड़, खजूर, तिल, खोपरा, सूखा मेवा तथा चरबी बढ़ानेवाले अन्य पौष्टिक पदार्थ इस ऋतु में सेवन योग्य माने जाते हैं।

✻ इन दिनों में ठंडा भोजन न करते हुए थोड़ा गर्म और घी-तेल की प्रधानतावाला भोजन करना चाहिए।

✻ इस ऋतु में बर्फ अथवा बर्फ का या फ्रीज का पानी, कसैले, तीखे तथा कड़वे रसप्रधान द्रव्यों का सेवन लाभदायक नहीं है। हलका भोजन भी निषिद्ध है।

✻ इन दिनों में उपवास अधिक नहीं करने चाहिए। वातकारक, रूखे-सूखे, बासी पदार्थ और जो पदार्थ व्यक्ति की प्रकृति के अनुकूल न हों, उनका सेवन न करें।

✻ शरीर को ठंडी हवा के संपर्क में अधिक देर तक न आने दें।

✻ प्रतिदिन प्रातःकाल में व्यायाम, कसरत व शरीर की मालिश करें।

✻ इस ऋतु में गर्म जल से स्नान करना चाहिए।

✻ शरीर की चंपी करवाना और यदि कुश्ती या अन्य कसरतें आती हों तो उन्हें करना हितावह है।

✻ तेल मालिश के बाद शरीर पर उबटन लगाकर स्नान करना हितकारी होता है।

✻ कमरे और शरीर को थोड़ा गर्म रखें। सूती, मोटे तथा ऊनी वस्त्र इस मौसम में लाभकारी होते हैं।

✻ प्रातःकाल सूर्य की किरणों का सेवन करें। पैर ठंडे न हों इस हेतु जूते पहनें।

✻ स्कूटर जैसे दुपहिया खुले वाहनों द्वारा इन दिनों लंबा सफर न करते हुए बस, रेल, कार जैसे दरवाजे-खिड़कीवाले वाहनों से ही सफर करने का प्रयास करें।

✻ हाथ-पैर धोने में भी यदि गुनगुने पानी का प्रयोग किया जाय तो हितकर होगा।

✻ बिस्तर, कुर्सी अथवा बैठने के स्थान पर कम्बल, चटाई, प्लास्टिक अथवा टाट की बोरी बिछाकर ही बैठें। सूती कपड़े पर न बैठें।

✻ दशमूलारिष्ट , लोहासव, अश्वगंधारिष्ट, च्यवनप्राश अथवा अश्वगंधावलेह जैसी देशी व आयुर्वेदिक औषधियों का इस काल में सेवन करने से वर्षभर के लिए पर्याप्त शक्ति का संचय किया जा सकता है।

✻ गरिष्ठ खाद्य पदार्थों के सेवन से पहले अदरक के टुकड़ों पर नमक व नीबू का रस डालकर खाने से जठराग्नि अधिक प्रबल होती है।

✻ भोजन पचाने के लिए भोजन के बाद निम्न मंत्र के उच्चारण के साथ पेट पर बायाँ हाथ दक्षिणावर्त घुमा लेना चाहिए, जिससे भोजन शीघ्रता से पच सके।

अगस्त्यं कुंभकर्णंच शनिं च बडवानलम्।
आहारपरिपाकार्थं स्मरेद् भीमं च पंचमम्॥

✻ इस ऋतु में सर्दी, खाँसी, जुकाम या कभ[ी] बुखार की संभावना भी बनी रहती है, जिनसे बचन[े] के उपाय निम्नलिखित हैं :

✻ सर्दी-जुकाम और खाँसी में सुबह तथ[ा] रात्रि को सोते समय हल्दी-नमकवाले ताजे, भु[ने] हुए एक मुट्ठी चने खायें, किंतु उनके बाद कोई [...] पेय पदार्थ, यहाँ तक की पानी भी न पियें। भोज[न] में घी, दूध, शक्कर, गुड़ और खटाई का सेवन ब[ंद] कर दें। सर्दी-खाँसीवाले स्थायी मरीज के लि[ए] यह एक सस्ता प्रयोग है।

✻ भोजन के पश्चात् हल्दी-नमकवाली भु[नी] हुई अजवाइन को मुखवास के रूप में नित्य से[वन] करने से सर्दी-खाँसी मिट जाती है। अजवाइन [...] धुआँ लेना चाहिए। अजवाइन की पोटली से छा[ती] की सेंक करनी चाहिए। मिठाई, खटाई [...] चिकनाईयुक्त चीजों का सेवन नहीं करना चाहि[ए]।

✻ प्रतिदिन मुखवास के रूप में दालचीनी [...] प्रयोग करें। २ ग्राम सोंठ, आधा ग्राम दालच[ीनी] तथा ५ ग्राम पुराना गुड़, इन तीनों को कटो[री में] गरम करके रोज ताजा खाने से सर्दी मिटती है।

✻ सर्दी-जुकाम अधिक होने पर नाक [...] हो जाती है, सिर भी भारी हो जाता है और [...] बेचैनी होती है। ऐसे समय में एक तपेली में [...] को खूब गरम करके उसमें थोड़ा दर्दशामक म[लहम] (पेनबाम), नीलगिरि का तेल अथवा [...] डालकर सिर व तपेली ढँक जाय ऐसा कोई कपड़ा या तौलिया ओढ़कर गरम पानी की [...] लें। ऐसा करने से कुछ ही मिनटों में लाभ [...]

सर्दी से राहत मिलेगी।

✲ मिश्री के बारीक चूर्ण को नसवार की तरह नाक से सूँघें।

✲ स्थायी सर्दी-जुकाम और खाँसी के मरीज को २ ग्राम सोंठ, १० से १२ ग्राम गुड़ और थोड़ा घी एक कटोरी में लेकर उतनी देर तक गरम करना चाहिए जब तक गुड़ पिघल न जाय। फिर सबको मिलाकर रोज सुबह खाली पेट गरम-गरम खा लें। भोजन में मीठी, खट्टी, चिकनी और गरिष्ठ वस्तुएँ न लें। रोज सादे पानी की जगह पर सोंठ की डली डालकर उबाला हुआ पानी ही पियें या गरम किया हुआ पानी ही पियें। इस प्रयोग से रोग मिट जायेगा।

✲ सर्दी के कारण होनेवाले सिरदर्द, छाती के दर्द और बेचैनी में सोंठ का चूर्ण पानी में डालकर गरम करके पीड़ावाले स्थान पर थोड़ा लेप करें। सोंठ की डली डालकर उबाला गया पानी पियें। सोंठ का चूर्ण शहद में मिलाकर थोड़ा-थोड़ा रोज चाटें। भोजन में मूँग, बाजरा, मेथी और लहसुन का प्रयोग करें। इससे भी सर्दी मिटती है।

✲ हल्दी को अंगारों पर डालकर उसकी धूनी लें। हल्दी के चूर्ण को दूध में उबालकर पीने से लाभ होता है।

बुखार मिटाने के उपाय :

✲ मोठ या मोठ की दाल का सूप बनाकर पीने से बुखार मिटता है। उस सूप में हरी धनिया तथा मिश्री डालने से मुँह अथवा मल द्वारा निकलता खून बंद हो जाता है।

✲ कॉफी बनाते समय उसमें तुलसी और पुदीना के पत्ते डालकर उबालें। फिर नीचे उतारकर १० मिनट ढँककर रखें। उसमें शहद डालकर पीने से बुखार में राहत मिलती है और शरीर की शिथिलता दूर होती है।

✲ १ से २ ग्राम पीपरामूल-चूर्ण शहद के साथ सेवन कर फिर गर्म दूध पीने से मलेरिया कम होता है।

✲ ५ से १० ग्राम लहसुन की कलियों को काटकर, तिल के तेल अथवा घी में तलें और सेंधा नमक डालकर रोज खायें। इससे मलेरिया का बुखार दूर होता है।

✲ सौंफ तथा धनिया के काढ़े में मिश्री मिलाकर पीने से पित्तज्वर का शमन होता है।

✲ हींग तथा कपूर को समान मात्रा में लेकर बनायी गयी एक-दो गोली लें, उसे अदरक के रस में घोंटकर रोगी की जीभ पर लगायें, रगड़े। दर्दी अगर दवा पी सके तो यही दवा पीये। इससे नाड़ी सुव्यवस्थित होगी और बुखार मिटेगा।

✲ कई बार बुखार १०३-१०४ (फेरनहाइट) से ऊपर हो जाता है, तब मरीज के लिए खतरा पैदा हो जाता है। ऐसे समय में ठण्डे पानी में खाने का नमक, नौसादर या कोलनवॉटर डालें। उस पानी में पतले कपड़े के टुकड़े डुबोकर, मरीज की हथेली, पाँव के तलवों और सिर (ललाट) पर रखें। जब रखा हुआ कपड़ा सूख जाय तो तुरंत ही दूसरा कपड़ा दूसरे साफ पानी में डुबायें और निचोड़कर दर्दी के सिर, हथेली और पैर के तलवों पर रखें। इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी देर में ठंडे पानी की पट्टियाँ बदलते रहने से अथवा बर्फ घिसने से बुखार कम होगा।

खाँसी के लिए इलाज :

✲ वायु की सूखी खाँसी में अथवा गर्मी की खाँसी में, खून गिरने में, छाती के दर्द में, मानसिक दुर्बलता में तथा नपुंसकता के रोग में गेहूँ के आटे में गुड़ अथवा शक्कर और घी डालकर बनाया गया हलुआ विशेष हितकर है। वायु की खाँसी में गुड़ के हलुए में सोंठ डालें। खून गिरने के रोग में मिश्री-घी में हलुआ बनाकर किशमिश डालें। मानसिक दौर्बल्य में हलुए में बादाम डालकर खायें। कफजन्य खाँसी तथा श्वास के दर्द में गुनगुने पानी के साथ अजवाइन खाने तथा उसकी बीड़ी अथवा चिलम बनाकर धूम्रपान (तम्बाकू बिना) करने से लाभ होता है। कफोत्पत्ति बंद होती है। पीपरामूल, सोंठ और बहेड़ादल का चूर्ण बनाकर शहद में मिलाकर प्रतिदिन खाने से सर्दी-कफ की खाँसी मिटती है।

जले स्थान का उपचार : जादुई चमत्कार

दीपावली के पटाखों से शरीर का कोई भी अंग जल जाय तो कच्चे आलू के गोल टुकड़े काटकर उस स्थान पर ऐसे रख दें कि रस अंदर चला जाय अथवा कच्चे आलू का रस लगा दें।

देश के बड़े-बड़े दिग्गज नेता जो सोच भी नहीं पाये, वह जयललिता ने कर दिखाया । 'जबरन मतांतरण निषेध अध्यादेश' लाकर उन्होंने तमिलनाडु में ईसाई मिशनरियों के मतांतरण अभियान पर लगाम लगा दी है । तमिलनाडु में ईसाइयों द्वारा बड़े पैमाने पर सामुहिक मतांतरण की घटनाएँ प्रकाश में आती रही हैं । १९८० में मीनाक्षीपुरम् में ८०० हरिजनों के सामूहिक मतांतरण की घटना ने सबको चौंका दिया था ।

हाल में लगभग एक माह पूर्व जब मदुरै में सूखा पीड़ित निर्धन २५० हिंदू ग्रामीणों का 'सेवन्थ डे एडवेंटिस्ट चर्च' ने ईसाई मत में सामुहिक मतांतरण कराया तो एक बार फिर हिंदुओं के मतांतरण का प्रश्न सुर्खियों में आ गया ।

ईसाई मत ग्रहण करनेवाले इन ग्रामीणों में अच्छी-खासी संख्या महिलाओं की थी । ईसाई मिशनरियाँ इसे सेवाकार्य बताती हैं । इससे पहले कि राज्य में मतांतरण का यह कुचक्र अपने शिकंजे में कई और गरीब, दलित, भोले-भाले हिंदुओं को फँसाये, मुख्यमंत्री जयललिता ने 'जबरन मतांतरण निषेध अध्यादेश' लाकर ऐसे प्रयासों पर रोक लगा दी है, जिसे ५ अक्टूबर को तमिलनाडु के राज्यपाल श्री पी.एस.मोहन राव ने मंजूरी दे दी ।

'तमिलनाडु जबरन मतांतरण निषेध अध्यादेश - २००२' नाम से जारी इस अध्यादेश में स्पष्ट कहा गया है कि **'डरा-धमकाकर, आर्थिक प्रलोभन देकर तथा अन्य किसी प्रकार का झांसा देकर मतांतरण करवानेवाले व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास की सजा और ५०,००० रुपये तक का जुर्माना देना पड़ेगा । यदि उसने किसी महिला या अवयस्क का मतांतरण कराया है तो जुर्माने की राशि एक लाख रुपये तक बढ़ायी जा सकती है । इतना ही नहीं किसी भी मतांतरण की सूचना अनिवार्य रूप से स्थानीय दंडाधिकारी को देनी होगी ।'**

कांची कामकोटि पीठ के शंकराचार्य श्री जयेंद्र सरस्वती स्वामी ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि 'ऐसा कानून पूरे देश में लागू होना चाहिए । तमिलनाडु में जारी हुआ यह अध्यादेश समाज में शांति, भाईचारा, एकता बनाये रखने में सहायक होगा, किंतु सिर्फ अध्यादेश लाने से ही उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता, लक्ष्य तब हासिल होगा जब इसे लागू करने में जनता का पूर्ण सहयोग मिलेगा ।'

निद्राकाले ताम्बूलं मुखात् स्त्रियं शयनाद् भालात्तिलकं शिरसः पुष्पं च त्यजेत् ।

(धर्मसिंधु ३ पू., क्षुद्रकाल)

निद्रासमयमासाद्य ताम्बूलं वदनात्त्यजेत् ।
पर्यंकात्प्रमदां भालात्पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ॥

(भगवंतभास्कर, आचारमयूख)

जो स्वस्थ जीवन जीना चाहते हैं उन्हें शास्त्र की आज्ञा का पालन करना चहिए । सोते समय मुख से ताम्बूल (पान), शय्या से स्त्री, ललाट से तिलक और सिर से पुष्प का त्याग कर देना चाहिए ।

जो इस नियम का पालन नहीं करते वे खिन्न जीवन जीते हैं तथा कलह-क्रूरता के शिकार हो जाते हैं ।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते ।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

(स्कंदपुराण, मा. के. : ३.४५)

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम् ॥

(शिवपुराण, रुद्र. सती. : ३५.९)

जहाँ अपूज्य लोगों का आदर होता है और पूज्यजनों का निरादर होता है, वहाँ दुर्भिक्ष, मरण और भय - ये तीन उपद्रव होते हैं ।

सिर, आँख, कान व नाक के रोगों में रक्षा हेतु टोपी या पगड़ी पहननी चाहिए ।

एक बालक का अनुभव

जब मैं पहली कक्षा में था, तब मुझे परीक्षा में ६३% अंक मिले, दूसरी कक्षा में ७२% अंक मिले, तीसरी कक्षा में मुझे ७९% अंक मिले और जब चौथी कक्षा में मैंने बापूजी से सारस्वत्य मंत्र की दीक्षा ली, तब मुझे ९४% अंक मिले।

जब मैं आश्रम से संचालित 'बाल संस्कार केंद्र' में जाने लगा, तब वहाँ पर मैंने ध्यान, भ्रामरी प्राणायाम सीखा और जिह्वा का अग्रभाग तालू में लगाकर पढ़ाई करने लगा, जिससे मेरी यादशक्ति बढ़ गयी।

- करुणेश प्रताप सिंह (उम्र : ११ वर्ष)
सेंट एन्थनी हाई स्कूल, सांताक्रूज, मुंबई.

गुड़गाँव (हरियाणा) ३० सित. से २ अक्टू. : २९ सितंबर को पंचकुला (हरियाणा) में चार दिवसीय सत्संग-प्रवचन की पूर्णाहुति कर पूज्यश्री ३० सितंबर को गुड़गाँव पहुँचे। वहाँ २ अक्टूबर तक ब्रह्मनिष्ठ बापूजी की अनुभूतिसंपन्न पीयूषवाणी से श्रद्धालु भक्तगण आत्मिक आनंद के सरोवर में सराबोर होते रहे।

पूज्यश्री ने प्राणि-मात्र के एकमात्र परम लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए कहा : **''जब तक जीव परमात्मा को नहीं पा लेता तब तक उसके जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहेगा। उस ज्ञानस्वरूप परमात्मा को पाने की प्यास मनुष्य में जन्मजात मौजूद है। आपके अंदर जानने की इच्छा है, आप परमात्मा को जानिये।''**

राष्ट्र के नेताओं को सीख देते हुए परम पूज्य बापूजी ने कहा : **''वे कुर्सी पाने या बचाने के लिए जातिवाद या फूट डालने की नीति न अपनायें। घृणा व द्वेष फैलानेवाले भाषण न करें। इसमें उनका, प्रजा का तथा राष्ट्र का भी हित निहित है। अनुचित हथकंडों से प्राप्त की गयी कुर्सी अधिक समय तक नहीं टिकेगी।''**

२ अक्टूबर को गुड़गाँव में सत्संग-प्रवचन की पूर्णाहुति हुई।

मैनपुरी (उ.प्र.) : रात्रि मुसाफिरी करते हुए पूज्यश्री मैनपुरी पहुँचे, जहाँ अगले दिन ३ अक्टूबर से शुरू हुआ सत्संग-वर्षा का सिलसिला! तत्पश्चात् ५ अक्टूबर तक मैनपुरी के भक्तजन पूज्यश्री की ज्ञानगंगा से लाभान्वित हुए।

अलीगढ़ (उ.प्र.) : ६ अक्टूबर को पूज्यश्री का सत्संग अलीगढ़ (उ.प्र.) में प्रारंभ हुआ। सद्गुरुदेव के दर्शन-सत्संग के प्यासे, वर्षों की इंतजारी-बेकरारी से बेकरार भक्तों का जनसैलाब उमड़ पड़ा।

गीतामर्मज्ञ पूज्य बापूजी ने विश्वमानव को शांति व सौहार्द का संदेश दिया। श्रीमद्भगवद्गीता को मानवमात्र का पथप्रदर्शक बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''**यह केवल हिंदू या किसी संप्रदाय-विशेष का ही ग्रंथ नहीं, बल्कि प्राणि-मात्र का पथप्रदर्शक ग्रंथ है। कोई भगवान को माने या ना माने, चाहे भगवान श्रीकृष्ण को गालियाँ देनेवाला ही क्यों न हो ! वह भी यदि गीता में कही गयी बातों को अपने जीवन में लाये तो उसका भी मंगल होगा। उसके संपर्क में आनेवालों का भी कल्याण होगा।**''

रजोकरी (दिल्ली) : ८ अक्टूबर की शाम दिल्ली स्थित रजोकरी आश्रम में 'आत्मसाक्षात्कार दिवस' हर्षोल्लास से मनाया गया। हजारों गाड़ियों के काफिले... रंग-बिरंगी वेशभूषा में, कीर्तन-भजन की मधुर धुन बजाती अनेक बैंड-पार्टियाँ... ४ कि.मी. से भी लंबा कीर्तन-यात्रियों का विशाल काफिला... अनेक प्रकार की प्रेरणादायी झाँकियाँ... नाचते-झूमते-गाते साधकों का विशाल सैलाब...

ये कुछ झाँकियाँ हैं आत्मसाक्षात्कार दिवस की, जो दिल्ली में बड़े धूमधाम से मनाया गया। दिल्ली के साधकों की प्रार्थना फली। पूज्यश्री का सत्संग ८ अक्टूबर को तो अलीगढ़ में संपन्न हुआ और कुछ ही समय में वे हेलीकॉप्टर से रजोकरी पहुँच गये। दिल्ली का भक्तसमुदाय पूज्यश्री को अपने बीच पाकर बड़ा आनंदित हुआ। व्यासपीठ पर पूज्यश्री का आगमन होते ही रजोकरी आश्रम जय-जयकार से गूँज उठा।

लाखों शिष्यों के इंतजार की घड़ियाँ फलीं। पूज्यश्री ने कहा : ''**अलीगढ़ (उ.प्र.) की विशाल भक्त-मंडली को पटा-पुटाकर मुझे हेलीकॉप्टर से भक्त यहाँ (दिल्ली) जल्दी-जल्दी ले आये।**''

नीमच (म.प्र.) : १० व ११ अक्टूबर, २ दिवसीय सत्संग प्रवचन का कार्यक्रम नीमच (म.प्र.) में संपन्न हुआ। यहाँ से रतलाम जाते हुए **मंदसौर (म.प्र.)** में ११ अक्टूबर की शाम एक सत्र का सत्संग प्रवचन हुआ।

रतलाम (म.प्र.) : १२ से १५ अक्टूबर मांगल्य धाम रतलाम (म.प्र.) में ४ दिवसीय 'विद्यार्थी सर्वांगीण उत्थान शिविर' का आयोजन हुआ। देश के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में आये छात्र-छात्राओं ने पूज्यश्री की अनुभव संपन्न वाणी से तेजस्वी-ओजस्वी जीवन की कुंजियाँ पायीं। पूज्यश्री ने उन्हें स्मरणशक्ति बढ़ाने के यौगिक प्रयोग सिखाये साथ ही शरीर को स्वस्थ व मन को प्रसन्न रखने की कुंजियाँ भी बतायीं। लिखित प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं। उनके विजेताओं को पुरस्कार व प्रमाण-पत्र वितरित किये गये। पूज्यश्री के पावन मार्गदर्शन में आयोजित विभिन्न विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविरों में शामिल हो चुके संस्कारवान विद्यार्थियों ने यहाँ ध्यान की गहराइयों का अनुभव किया। प्राचीन काल में नैमिषारण्य में शांतात्मा होकर परमात्मा में समाहित ६० हजार ऋषियों के बारे में शास्त्रों में पढ़ा-सुना जाता है। प्रातः-सायं ध्यान के समय ऐसा लगता था मानो उन्हीं की संताने यहाँ देखने को मिल रही हैं।

१७ से २१ अक्टूबर तक आयोजित ५ दिवसीय 'शरद पूर्णिमा' की ध्यान योग शिविर में गुरुपूर्णिमा-सा दिव्य माहौल नजर आया। पूज्यश्री ने अपनी नूरानी निगाहों से भर-भर जाम पिलाये, जिन्हें शिष्यों ने भी अपनी हृदयरूपी प्याली में भर-भर पिया। ध्यान के क्षणों में, हर शाम सृजित होता अलौकिक दुर्लभ दिव्य वातावरण केवल अनुभवगम्य है, कागज-कलम का नहीं हृदय का विषय है। कभी खुले आकाश में, कभी चंद्रमा की चाँदनी में तो कभी सत्संग-मंडप में होते ध्यान के गहरे प्रयोग तथा शरद पूर्णिमा की रात्रि में चाँदनी में रखी वैदिक विधि से बनायी हुई सोने-चाँदी से संस्कारित खीर को सभी शिविरार्थियों ने पाया। १९ अक्टूबर को पूज्यश्री के श्रीमुख से निकली तपस्विनीजी गुणमंजरी देवी व वैष्णो देवी की कथा चित्ताकर्षणी और अवश्यमेव देखने-सुनने योग्य है। **इसकी ऑडियो, विडियो कैसेट्स और वी.सी.डी. तैयार की गयी हैं।**

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

सिद्धपुर (गुज.) : १७ से १९ नवम्बर २००२: काकोशी चार रास्ता । पूर्णिमा दर्शन : १९ नवम्बर। फोन : (०२७६७) २४९६९. मो. : ९८२४२५६०७१.

अबाल-वृद्ध और नर-नारी, पी रहे सत्संग की प्याली।
मुख से गाते कभी कीर्तन और हाथों से बजाते ताली ॥
अलीगढ़ (उ.प्र.) में आयोजित पूज्यश्री के सत्संग कार्यक्रम में हरि-कीर्तन में तल्लीन विशाल जनसमुदाय।

पूज्य बापूजी के ३९वें आत्मसाक्षात्कार दिवस के उपलक्ष्य में दिल्ली में निकली ४ कि.मी. लंबी विशाल शोभायात्रा।

गुरुवर ने राह दिखायी आत्मज्ञान की । भक्तों को दे दी दीक्षा प्रभुनाम की ॥
भगवन्नाम जयघोष करते निकली शोभायात्रा भक्तों की। भक्तों ने फैलायी सुवास गुरुज्ञान की ॥

BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 236. REGD. NO. TECH/47 833/MBI/2002 POSTING FROM MUMBAI 9-10 OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2002 WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. U(C) 232/2002 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.
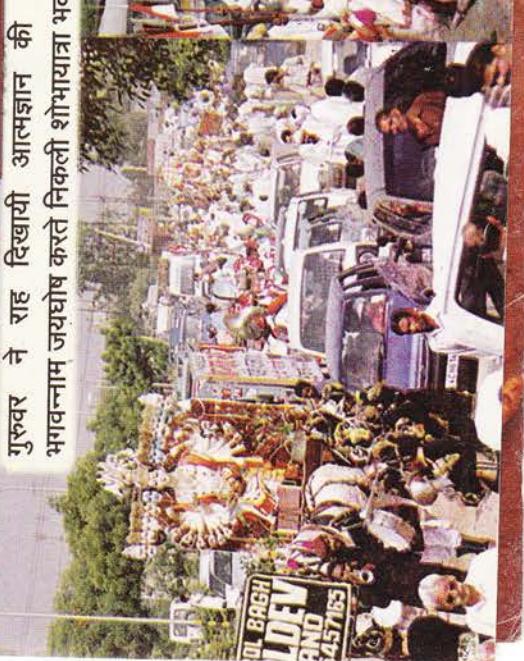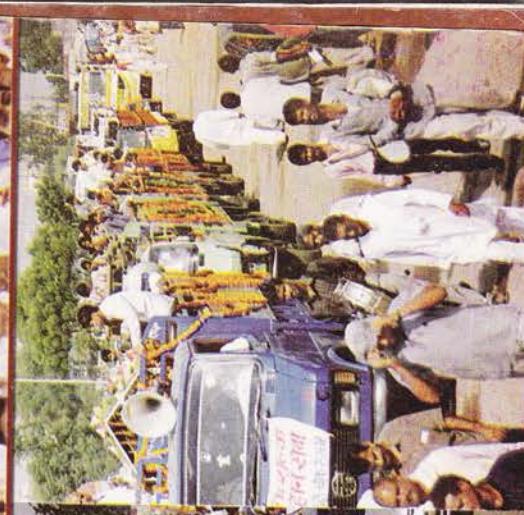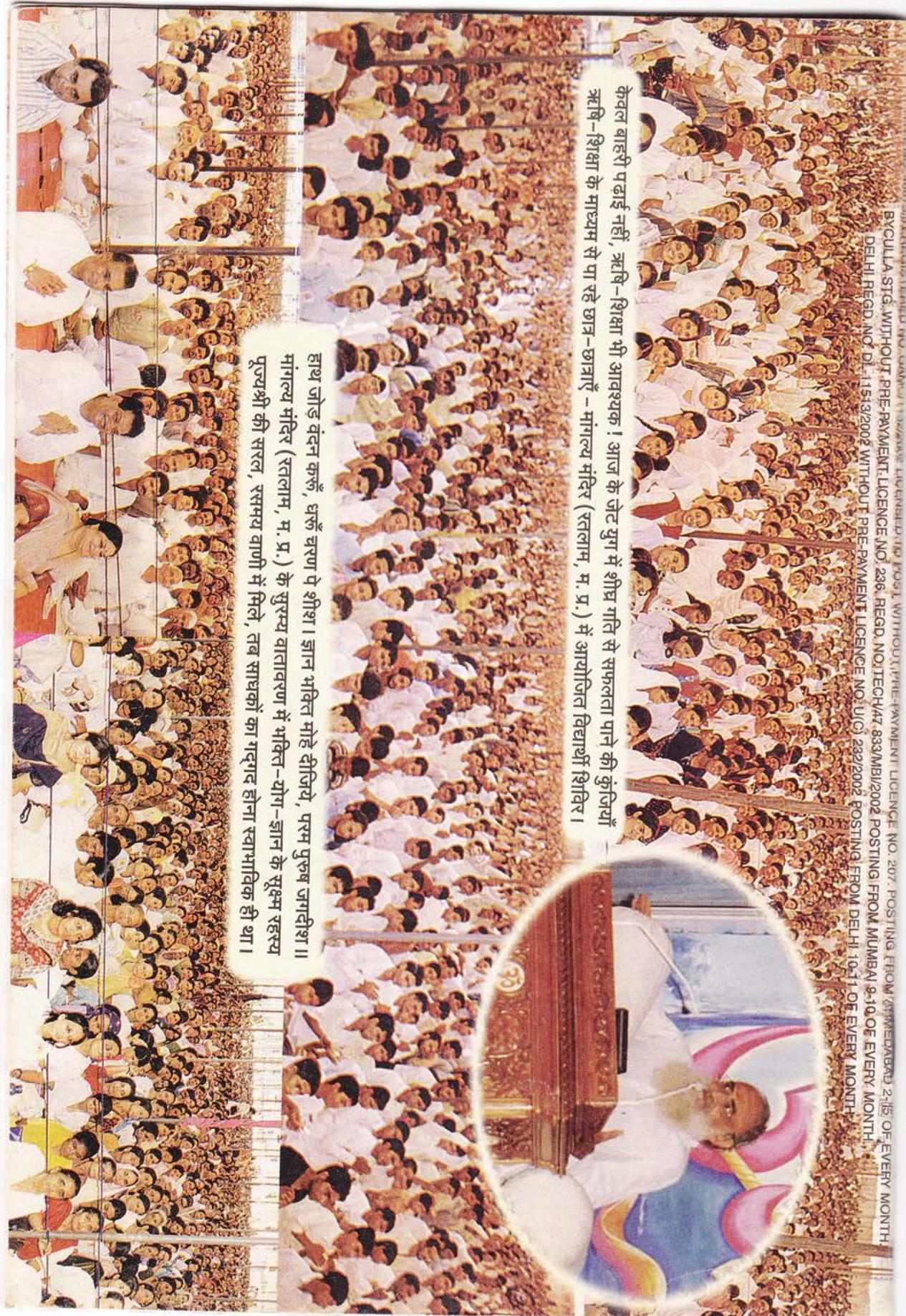
केवल बाहरी पढ़ाई नहीं, ऋषि-शिक्षा भी आवश्यक ! आज के जेट युग में शीघ्र गति से सफलता पाने की कुंजियाँ ऋषि-शिक्षा के माध्यम से पा रहे छात्र-छात्राएँ - मांगल्य मंदिर (रतलाम, म. प्र.) में आयोजित विद्यार्थी शिविर।

हाथ जोड़ वंदन करूँ, धरूँ चरण पे शीश। ज्ञान भक्ति मोहे दीजिये, परम पुरुष जगदीश ॥
मांगल्य मंदिर (रतलाम, म. प्र.) के सुरम्य वातावरण में भक्ति-योग-ज्ञान के सूक्ष्म रहस्य पूज्यश्री की सरल, रसमय वाणी में मिले, तब साधकों का गद्‌गद होना स्वाभाविक ही था।